समाजवाद से सावधान

प्रवचन-क्रम

1. समाजवाद अर्थात पूर्ण विकसित पूंजीवाद...2
2. धर्म-विरोधी तथाकथित समाजवाद...16
3. पूंजीवाद की नैसर्गिक व्यवस्था...34
4. कोरा शब्दः लोकतांत्रिक समाजवाद...49
5. पूंजीवाद, समाजवाद और सर्वोदय..64

समाजवाद से सावधान
पहला प्रवचन

समाजवाद अर्थात पूर्ण विकसित पूंजीवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं।
एक महानगरी में भीड़ थी। रास्ते पर लाखों लोग खड़े थे जो आतुरतापूर्वक सम्राट के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ समय पश्चात सम्राट की सवारी आई। भीड़ के सभी लोग सम्राट के वस्त्रों की चर्चा करने लगे और मजा यह कि सम्राट बिल्कुल नग्न था, उसके शरीर पर वस्त्र थे ही नहीं। केवल एक छोटे से बच्चे को, जो अपने बाप के कंधे पर बैठ कर आ गया था, बड़ी हैरानी हुई। उसने अपने बाप से कहा कि लोग सम्राट के सुंदर वस्त्रों की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन मुझे तो सम्राट नग्न दिखाई पड़ रहा है। उसके बाप ने उससे कहाः चुप नासमझ, कोई सुन लेगा तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी और वह उस बच्चे को लेकर भीड़ से बाहर हो गया।
सम्राट नग्न था और लोग उसके वस्त्रों की चर्चा कर रहे थे। बात क्या थी?
कुछ माह पूर्व एक आदमी ने उस सम्राट से कहा था कि आपने सारी पृथ्वी जीत लीं, लेकिन आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। मैं लाकर दे सकता हूं। सम्राट का मन लोभ से भर गया। सब उसके पास था, पर देवताओं के वस्त्र न थे। उस आदमी ने कहा फिकर न करें, थोड़ा खर्च तो होगा, लेकिन वस्त्र लेकर मैं आ जाऊंगा। छह महीने की उसने मोहलत चाही। छह महीने तक सम्राट ने एक महल में उसे बंद कर दिया। चारों तरफ से नंगी तलवारों का पहरा बैठा दिया। वह आदमी कभी लाख, कभी दो लाख रुपये मांगने लगा। उसने छह महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट से लिए वस्त्र लाने के लिए; लेकिन सम्राट निश्चिंत था, क्योंकि महल में वह कैद था और भाग नहीं सकता था। छह महीने पूरे होने पर वह आदमी एक बहुमूल्य पेटी में वस्त्र लाकर उपस्थित हुआ। राजमहल आया--बड़े सम्राट आमंत्रित थे, उसने ताला खोला, सम्राट से कहा, अपनी पगड़ी मुझे दे दें। सम्राट की पगड़ी पेटी के भीतर डाली, फिर पेटी के भीतर से कोई पगड़ी निकाली, लेकिन हाथ उसका खाली था। सम्राट ने गौर से देखा। उसने कहा, पगड़ी आपको दिखाई पड़ रही है? और धीरे से कहा कि जब मैं चलने लगा तो देवताओं ने कहा था कि ये वस्त्र उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं। हाथ खाली था, लेकिन सम्राट को तत्काल पगड़ी दिखाई पड़ने लगी। उसने कहा, इतनी सुंदर पगड़ी मैंने कभी नहीं देखी। फिर सम्राट के एक-एक वस्त्र उस पेटी में डाले गए और झूठे वस्त्र सम्राट पहनता चला गया और झूठे वस्त्रों से कोई अर्थ न था, वह नंगा होता चला गया। फिर जब आखिरी वस्त्र के उतारने की बात आई, तब सम्राट घबड़ाया। लेकिन उस आदमी ने कहा कि अब घबराने से कोई फायदा नहीं। झूठ की यात्रा शुरू हो जाए तो पूरी ही करनी पड़ती है, वापस नहीं लौट सकते, लोग क्या कहेंगे? आखिरी वस्त्र भी सम्राट का उतर गया। दरबारी भी बड़े जोर से प्रशंसा करने लगे कि इतने सुंदर वस्त्र हमने कभी नहीं देखे, क्योंकि उस आदमी ने कहा कि ये वस्त्र सिर्फ उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ है। सब दरबारियों को वस्त्र दिखाई पड़ने लगे जो नहीं थे। प्रत्येक दरबारी को ऐसा लगा कि जब सबको दिखाई पड़ रहे हैं तो वस्त्र होंगे ही। जरूर सिर्फ मुझे नहीं दिखाई पड़ रहे हैं तो अपना बाप संदिग्ध हुआ, लेकिन अब इस बात को खोलने से कोई मतलब नहीं। लेकिन यह बात राजमहाल के भीतर की थी। उस आदमी ने कहा, महाराज, देवताओं ने कहा है कि यह वस्त्र पहली दफा पृथ्वी पर जा रहे हैं, इनका जुलूस, इनकी शोभायात्रा भी निकालना जरूरी है, रथ तैयार है, आप बाहर चलें। सम्राट घबराया। लेकिन उस आदमी ने कहा, आप बिल्कुल न घबड़ाए, आपके रथ के सामने ही डुग्गी पीटते हुए लोग चलेंगे कि यह वस्त्र उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने बाप से पैदा हुए है। ये वस्त्र सबको दिखाई पड़ेंगे, आप घबड़ाएं नहीं। सम्राट रथ पर सवार हुआ। सभी को नग्न दिखाई पड़ा, लेकिन कौन कहे कि सम्राट नग्न है। एक छोटे-से बच्चे ने यह कहा

था तो उसके बाप ने कहा, नासमझ, अभी तुझे अनुभव नहीं है, जब तू बड़ा होगा तब वस्त्र तुझे दिखाई पड़ने लगेंगे। यहां कोई सुन लेगा तो मुसीबत हो सकती है। इस कहानी से क्यों मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं? समाजवाद के नाम
से आज सारी दुनिया में शोर है, उस भीड़ के बीच में मेरी हालत उस बच्चे जैसी है जो कहे कि सम्राट नंगा है। लेकिन मुझे लगता है कि किसी को यह बात कहनी चाहिए। मनुष्य का मन ऐसा है कि प्रचारित असत्य भी सत्य मालूम होने लगते हैं। बहुत बार बोले गए झूठ भी सच मालूम होने लगते हैं। और पहली बार बोला गया सच भी सच नहीं मालूम पड़ता है। इधर सौ वर्षों से समाजवाद शब्द के आस-पास एक, "मिथ", एक कहानी गढ़ी जा रही है। उसके निरंतर प्रचार ने, जो समाजवादी नहीं हैं, उन्हें भी समाजवादी बना दिया है। जो भीतर से समाजवादी नहीं हैं, बाहर से वे भी उसका गुणगान करते दिखाई पड़ते हैं। समाजवाद के विरोध में बोलने का साहस किसी को नहीं मालूम पड़ता। सब अनुभवी हैं, मैं एक गैर-अनुभवी आदमी हूं। इसलिए उसके विपरीत बोलने की कोशिश करूंगा।
लेकिन मनुष्य-जाति के इतिहास में भीड़ कुछ मान ले, इससे सच नहीं हो जाता है। भीड़ ने हमेशा बड़े-बड़े झूठ स्वीकार किए हैं और हमेशा उन्हीं के साथ जीती रही है। एक नया असत्य मनुष्य के मन को पकड़े है समाजवाद के नाम से। उसकी पूरी व्याख्या समझ लेनी जरूरी है।
पहली बात तो यह है कि समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में शत्रु की भांति खड़ा हुआ है। समाजवाद जो कुछ भी हो, वह पूंजीवाद की संतान है। सामंतवाद की व्यवस्था से, फ्युडिलिज्म से पूंजीवाद पैदा हुआ। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो उससे समाजवाद पैदा हो सकता है, अगर साम्यवाद ठीक से विकसित हो तो उससे अराजकतावाद पैदा हो सकता है। लेकिन ठीक से विकसित हो तब। बच्चे मां के पेट से समय से पहले भी पैदा हो सकते हैं और मां आतुर हो सकती है कि नौ महीने क्यों प्रतीक्षा करूं। पांच महीने में बच्चा अगर निकल आए पेट से तो ज्यादा अच्छा है। चार महीने का कष्ट भी बचेगा, चार महीने की प्रतीक्षा भी बचेगी और बेटे से अभी मिलना हो जाएगा। लेकिन पांच महीने के बेटे मुर्दा पैदा होते हैं, जिंदा नहीं; और अगर जिंदा पैदा हो जाएं तो जिंदगी भर मुर्दे से भी बदतर उनकी हालत होती है।
रूस में जो समाजवाद पैदा हुआ, वह भी प्रीमेच्योर है। वह भी जरूरत से पहले पैदा हुआ है। रूस पूंजीवादी मुल्क था, इसलिए रूस में समाजवाद को जबरदस्ती पैदा करने की कोशिश की गई। समाजवाद तो पैदा हुआ, लेकिन मुर्दा पैदा हुआ। और समाजवाद के पैदा होने में, जिन गरीबों के लिए समाजवाद पैदा हुआ, उनकी ही लाखों की संख्या में हत्या भी करनी पड़ी। शायद मनुष्य-जाति, के इतिहास में समाजवादी मुल्कों ने जितनी हत्याएं की है, उतनी किसी ने भी नहीं कीं और आश्चर्य तो यह है कि जिन गरीबों के लिए, जिन मजदूरों और शोषितों के लिए समाजवाद खड़ा हुआ था, उन्हीं की हत्या की गई है। रूस में एक करोड़ पूंजीपति नहीं थे, एक करोड़ तो पूंजीपति आज अमरीका में भी नहीं हैं-- फिर रूस में अंदाजन एक करोड़ लोगों की जो हत्या हुई वह किसकी हत्या है? वह उनकी ही हत्या थी जिनके लिए कि समाजवाद लाना था। हत्या करना आसान हो जाता है अगर आप के ही हित में हत्या करनी हो। जब कोई हत्यारा आपके ही हित में हत्या करता है तो आप भी निहत्थे हो जाते हैं, बचाव भी नहीं कर सकते। एक करोड़ लोगों की हत्या के बाद भी रूस आज एक गरीब मुल्क है, अमीर मुल्क नहीं है। अभी भी समाजवाद मरा-मरा है और पिछले दस वर्षों से रूस रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठा रहा है। वह जो भूल हो गई उसकी तरफ वापस कदम उठाए जा रहे हैं। माओत्से तुंग का रूस से जो विरोध है, वह यही है कि रूस रोज पूंजीवादी होता चला जा रहा है। लेकिन रूस का पचास साल का अनुभव यह है कि समाजवाद लाने में थोड़ी जल्दी कर दी। देश पूंजी पैदा ही नहीं कर पाया था। यह ध्यान रहे, पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो समाजवाद उसका सहज परिणाम है। नौ महीने का गर्भ हो तो बच्चा सहज और चुपचाप पैदा हो जाता है। पूंजीवाद ठीक से विकसित न हो तो समाजवाद की बात सुसाइडल है, आत्मघाती है। मैं खुद समाजवादी हूं और जब समाजवाद से सावधान करने की बात करूंगा तो हैरानी होगी। हैरानी यह है कि मैं भी चाहता हूं कि बच्चा पैदा हो, लेकिन नौ महीने पूरे हो जाएं। यह देश अभी समाजवादी भी नहीं है और इस देश में समाजवाद की बातें उतनी ही खतरनाक हैं जितनी रूस में थीं, उतनी ही खतरनाक हैं जितनी चीन में हैं। चीन में फिर

लाखों लोगों की हत्या करने का उपाय करना पड़ रहा है और फिर भी समाजवाद नहीं आएगा, क्योंकि समय के पहले कुछ भी नहीं लाया जा सकता। जीवन की व्यवस्था में जल्दी नहीं हो सकती। भारत अभी पूंजीवादी नहीं है। इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि पूंजीवाद का क्या मतलब है?
पूंजीवाद हमारे मन में सिर्फ एक गाली की तरह आता है, एक निंदा की तरह, बिना यह जाने हुए कि पूंजीवाद ने मनुष्य-जाति के लिए क्या किया है। बिना यह समझे हुए कि पूंजीवाद ही मनुष्य जाति को समाजवाद तक पहुंचाने की प्रक्रिया है, बिना यह समझे हुए कि अगर मनुष्य कभी समान होगा और अगर कभी सारे मनुष्य खुशहाल होंगे और अगर कभी सारे मनुष्य दीनता और दरिद्रता से मुक्त होंगे तो उसमें सौ प्रतिशत हाथ पूंजीवाद का होगा।
पूंजीवाद के संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली तो यह
कि पूंजीवाद पूंजी उत्पन्न करने की व्यवस्था का नाम है। "ए सिस्टम दैट क्रिएट्स वेल्थ"--एक ऐसी व्यवस्था जो संपत्ति का सृजन करती है। दुनिया में पूंजीवाद के पहले किसी व्यवस्था ने पूंजी पैदा नहीं की थी। पूंजीवाद ने पूंजी पैदा की है। पैदा करने का मतलब यह है कि ऐसी पूंजी जमीन पर पैदा की है, जो आदमी अगर पैदा न करता तो खदानों से न निकलती, जमीन से न निकलती, आकाश से न निकलती। आज जमीन पर जो पूंजी है वह पैदा की गई पूंजी है। वह कोई प्राकृतिक संपत्ति नहीं है जो कि किसी खदान से मिलती हो, जमीन से मिलती हो, किसी झरने से मिलती हो, किसी प्रकृति से, किसी जगह से मिलती हो। पूंजीवाद ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में पूंजी पैदा करने की व्यवस्था ईजाद की। इसके पहले जो भी व्यवस्थाएं थीं, वे लुटेरी व्यवस्थाएं थीं। चंगीज हों कि तैमूरलंग हों, कि दुनिया के कोई भी सम्राट हों, सामंतों ने पूंजी को लूटा था, शोषण किया था। लेकिन पूंजीवाद ने पूंजी पैदा की है! लेकिन हम सामंतवादियों के साथ ही पूंजीवाद को भी रखने के आदी हो गया हैं। हम सोचते हैं, पूंजीवाद ने भी पूंजी का शोषण किया है। पूंजीवाद ने पूंजी निर्मित की है और पूंजी निर्मित हो जाए तो बंटवारा हो सकता है। पूंजी अगर निर्मित न हो तो बंटवारा किस चीज का होगा?
आज इंदिरा जी और उनके नासमझ साथी समझते हैं कि समाजवाद आ सकता है, संपत्ति बांटी जा सकती है। उनकी बातें ऐसी हैं कि संपत्ति के बिना ही संपत्ति को बांटने का वे विचार कर रहे हैं। देश के पास संपत्ति नहीं है। अगर आज हम बांटेंगे तो सिर्फ गरीबी बंटेगी, धन नहीं बंट सकता। धन है ही नहीं। होना चाहिए बांटने के लिए। बंटना चाहिए जरूर एक दिन, लेकिन बंटने के पहले होना चाहिए। पूंजीवाद संपत्ति पैदा करता है, समाजवाद संपत्ति बांटता है। लेकिन पैदा करना पहला काम है, बांटना दूसरा काम है और अगर पूंजीवाद संपत्ति पैदा न कर पाए तो समाजवाद सिर्फ गरीबी बांट सकता है। अगर हमारे देश ने यह निर्णय लिया समाजवादी होने का तो हम सदा के लिए गरीब होने का निर्णय लेंगे, क्योंकि हम गरीबी बांट कर रह जाएंगे और कुछ भी न कर पाएंगे, क्योंकि पूंजी को पैदा करने की व्यवस्था के सूत्र हमारे ध्यान में नहीं हैं।
पहली बात यह समझ लेना जरूरी है कि दुनिया के सारे लोगों ने मिल कर पूंजी पैदा नहीं की है, बिल्कुल थोड़े से लोगों ने पूंजी पैदा की है। कोई एक रॉकफेलर, कोई एक मार्गन, कोई एक फोर्ड, कोई रथचाइल्ड, कोई बिड़ला, कोई टाटा, कोई साहू पूंजी पैदा करता है। अगर हम अमरीका के दस बड़े नाम निकाल दें तो अमरीका भी हमारे जैसा ही गरीब देश होगा। हेनरी फोर्ड लंदन गया था। उसने स्टेशन पर आकर इंक्वायरी आफिस में पूछा कि कोई सस्ता सा होटल हो तो बता दो। क्लर्क ने कहाः आपके चेहरे को मैंने अखबारों में देखा है। लगता है कि आप हेनरी फोर्ड हैं। आप सस्ता होटल खोज रहे हैं? आपके बेटे और बेटियां आती हैं तो वे सबसे महंगे होटल खोजते हैं।
हेनरी फोर्ड ने कहा, मैं गरीब आदमी का बेटा हूं और मेरे बेटे हेनरी फोर्ड के बेटे हैं, अमीर आदमी के बेटे हैं। मैंने संपत्ति पैदा की है, मैं गरीब आदमी का बेटा हूं। मुझे सस्ता होटल बता दें, मैं किसी फोर्ड का बेटा नहीं हूं। अमरीका से दस बड़े नाम हम छांट दें तो अमरीका भी गरीब होगा। अमरीका के पास जो आज संपत्ति है वह कुछ लोगों के मस्तिष्क का आविष्कार और

कुछ लोगों की संपत्ति को पैदा करने की कला का परिणाम है। सारी दुनिया ने संपत्ति क्यों पैदा नहीं कर ली?
अभी हिंदुस्तान संपत्ति पैदा क्यों नहीं कर पाया? हम सबसे पुरानी कौम हैं और जमीन पर सबसे पुरानी हमारी संस्कृति है, लेकिन हम संपत्ति क्यों पैदा नहीं कर पाए? संपत्ति को पैदा करने की कला हम विकसित न कर पाए, क्योंकि हम संपत्ति-विरोधी देश हैं, इसलिए संपत्ति पैदा करने की दिशा में हमारी प्रतिभा नहीं जा सकी। हमारी प्रतिभा गई संन्यास की दिशा में। जो आदमी फोर्ड बन सकता था, वह जंगल चला गया। हमने अपनी सारी प्रतिभा को चैनेलाइज किया संन्यास की तरफ। तो हमने बड़े संन्यासी पैदा किए--बुद्ध पैदा किया, शंकर पैदा किया, नागार्जुन पैदा किया, महावीर पैदा किया; लेकिन हम संपत्ति पैदा करने वाले बड़े कुशल लोग पैदा न कर सके। उस तरफ हमारी प्रतिभा न गई संपत्ति के विरोध के कारण।
हिंदुस्तान से एक यात्री वापस लौटा। वह था काउंट कैसरलिन। उसने एक छोटा सा वाक्य लिखा है। पढ़ा तो बहुत हैरान हुआ। उसने लिखा हैः "इंडिया इ.ज ए रिच लैंड व्हेयर पुअर पीपुल लिव।" अर्थात "हिंदुस्तान एक अमीर देश है जहां गरीब लोग रहते हैं।" यह आदमी पागल तो नहीं है? अगर हिंदुस्तान अमीर देश है तो गरीब लोग वहां कैसे रहेंगे और अगर वहां गरीब लोगे रहते हैं तो देश अमीर कैसे है? लेकिन उसका मजाक मैं समझ गया। उसका मजाक यह था कि हिंदुस्तान कभी अमीर हो सकता था, लेकिन अमीरी पैदा करनी पड़ती है। प्रतिभा नियोजित करनी पड़ती है, जीनियस को यात्रा पकड़ानी पड़ती है, तब संपत्ति पैदा होती है; अन्यथा संपत्ति पैदा नहीं होती। संपत्ति के उत्पादक मजदूर और श्रमिक नहीं हैं। अन्यथा आदिवासी श्रम कर रहे हैं जन्मों-जन्मों से और संपत्ति पैदा नहीं कर पाए। अफ्रीका का गरीब भी श्रम कर रहा है, लेकिन संपत्ति पैदा नहीं हो पाई। अगर श्रम संपत्ति पैदा करता तो सारी दुनिया में संपत्ति पैदा हो जाती। उत्पादक कोई और है। कोई और प्रतिभा है पीछे। पूंजीवाद ने उस तरह की प्रतिभाओं को अवसर दिया है जो संपत्ति को पैदा करें और पूंजीवाद ने संपत्ति को पैदा करने का इंतजाम किया। बड़ा इंतजाम तो उसने यह किया है कि मनुष्य की जगह मशीन को लाने की कोशिश की, क्योंकि मनुष्य के हाथ से संपत्ति पैदा नहीं हो सकती। मनुष्य कितना ही श्रम कर ले, पेट भर ले तो बहुत है।
बुद्ध के जमाने में हिंदुस्तान की आबादी दो करोड़ थी। यह आबादी दो करोड़ ही रहती, ज्यादा नहीं हो सकती थी, क्योंकि दस बच्चे पैदा होते और नौ बच्चों को मरना ही पड़ता। क्योंकि न तो भोजन था, न दवा थी, न जगह थी, न मकान था, न इंतजाम था। उनके शरीर को बचाने का कोई उपाय न था, पिछले डेढ़ सौ वर्षों में दुनिया में एक्सप्लोजन हुआ मनुष्य-जाति का। आज साढ़े तीन अरब लोग हैं। ये साढ़े तीन अरब लोग पूंजीवाद की व्यवस्था के कारण जीवित हैं, अन्यथा ये जीवित नहीं रह सकते थे--पूंजीवादी व्यवस्था के बिना कल्पना के बाहर है कि साढ़े तीन अरब आदमी इस पृथ्वी पर जी जाएं।
पूंजीवाद ने क्या किया? मनुष्य की जगह मशीन को ईजाद किया, मनुष्य को हटाया श्रम से और मशीन को लगाया श्रम में। इसके दो परिणाम हुए। मशीन मनुष्य से हजारगुना काम कर सकती है, लाख गुना काम कर सकती है, करोड़गुना भी कर सकती हैं। मशीन की संभावनाएं अनंत हैं, मनुष्य की संभावनाएं बहुत सीमित हैं। मशीन की वजह से संपत्ति का इतना ढेर लगना शुरू हुआ और दूसरा काम, जैसे ही मशीन आई, मनुष्य गुलामी से मुक्त हो सका। पूंजीवाद की दूसरी बड़ी देन है दासता का अंत, गुलामी की समाप्ति। अगर मशीन न आती तो आदमी की गुलामी कभी भी मिट नहीं सकती थी। आदमी की गुलामी मिटाना असंभव था। आदमी को गुलाम रहना ही पड़ता, क्योंकि आदमी से काम लेना और आदमी से पीछे उसकी छाती पर या तो सवार हो कोई, पीछे कोड़े लेकर, तभी उससे हड्डी तोड़कर काम लिया जा सकता है। मशीन स्थापित हुई, सब्स्टीट्यूट हुई, तो ही आदमी गुलामी से मुक्त हो सकता है।
आज पृथ्वी पर आदमी गुलाम नहीं है, आज आदमी मुक्त है। लेकिन समाजवाद ने
एक झूठी और भ्रामक बाद पैदा करना शुरू की है कि संपत्ति और पूंजी श्रमिक पैदा कर रहा है। श्रमिक संपत्ति पैदा नहीं कर रहा है, श्रमिक सिर्फ संपत्ति के पैदा करने का बहुत गौण हिस्सा है और आज नहीं कल, श्रमिक

सुपरफ्तुअस--व्यर्थ हो जाएगा, क्योंकि मशीन उसे पूरी तरह से सब्स्टीट्यूट कर देगी। पचास साल के भीतर दुनिया में लेबर, श्रमिक जैसा आदमी नहीं होगा, होने की जरूरत भी नहीं है।
अशोभन है कि किसी आदमी को मशीन का काम करना पड़े जो मशीन कर सकती है। श्रमिक व्यर्थ हो जाएगा। संपत्ति के पैदा करने में श्रमिक धीरे-धीरे व्यर्थ होता गया और पचास साल में बिल्कुल बेकार हो जाएगा। श्रमिक की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी, क्योंकि श्रम नॉन-एसेंशियल, गैर-जरूरी हिस्सा है। जरूरी हिस्सा उत्पादक बुद्धि है, प्रोडक्टिव माइंड है। लेकिन समाजवाद ने एक भ्रम पैदा किया है कि संपत्ति मसल्स से पैदा हुई है। झूठी है यह बात। संपत्ति मस्तिष्क से पैदा हुई है, मसल्स से नहीं। और अगर समाजवाद ने यह जिद्द की और मसल्स को मस्तिष्क के ऊपर बिठा दिया तो मस्तिष्क विदा हो जाएगा और मसल्स वहीं पहुंच जाएंगी जहां हजार साल पहले गरीबी और भुखमरी थी, उससे आगे नहीं।
सारी संपत्ति मस्तिष्क की ईजाद है और ध्यान रहे, सारे लोगों ने संपत्ति के पैदा करने का श्रम भी नहीं उठाया है। एक आइंस्टीन ईजाद करता है, सारे लोग फायदे लेते हैं। एक फोर्ड संपत्ति पैदा करता है, सारे लोगों तक संपत्ति बिखर जाती है। लेकिन ऐसा समझाया जा रहा है कि पूंजीपति जो है वह लोगों से संपत्ति शोषित करता है। इससे बड़ी झूठी कोई बात नहीं हो सकती है। जो संपत्ति है ही नहीं, उसका शोषण होगा कैसे? उस संपत्ति का शोषण हो सकता है जो कहीं हो, लेकिन जो संपत्ति कहीं है ही नहीं उस संपत्ति का शोषण कैसे हो सकता है? पूंजीवाद संपत्ति का शोषण नहीं करता है, संपत्ति पैदा करता है। लेकिन जब संपत्ति पैदा होती है तो दिखाई पड़नी शुरू होती है और हजारों आंखों में ईर्ष्या का कारण बनती है।
समाजवाद के प्रभाव का कारण यह नहीं है कि हर आदमी हर दूसरे आदमी को समान समझता है। समाजवाद के बुनियादी प्रभाव का कारण मनुष्य की जन्मजात ईर्ष्या है--उनके प्रति जो सफल हैं, उनके प्रति जो समृद्ध हैं, उनके प्रति जिन्होंने कुछ पाया, जिन्होंने कुछ खोजा, जिन्होंने कुछ बनाया। मनुष्य जाति का बड़ा हिस्सा एकदम तमस में रहा है, उसने कुछ भी पैदा नहीं किया है। मनुष्य जाति के बड़े हिस्से ने न तो ज्ञान पैदा किया है, न संपत्ति पैदा की है, न शक्ति पैदा की है। लेकिन मनुष्य-जाति का यह बड़ा हिस्सा ईर्ष्या से पीड़ित जरूर हो गया है। उसे दिखाई पड़ रहा है--संपत्ति है, ज्ञान है, बुद्धि है, लोगों के पास कुछ है और निश्चित ही करोड़ों लोगों की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है।
रूस में जो क्रांति हुई है वह ईर्ष्या से, चीन में जो क्रांति हुई वह ईर्ष्या से और इस देश में भी जो समाजवाद की बातें हो रही हैं वे ईर्ष्याजन्य हैं। लेकिन ध्यान रहे, ईर्ष्या से कोई समाज निर्मित नहीं होता और यह भी ध्यान रहे, ईर्ष्या से समाज का किया गया रूपांतरण फलदाई, सुखदाई, मंगलदायी नहीं होगा। यह भी ध्यान रहे कि ईर्ष्या से हम किसी व्यवस्था को तोड़ तो देंगे, लेकिन नई व्यवस्था का सृजन नहीं कर पाएंगे। ईर्ष्या क्रिएटिव नहीं है, डिस्ट्रक्टिव है। ईर्ष्या कभी भी सृजनात्मक शक्ति नहीं है। वह तोड़ सकती है, मिटा सकती है, बना नहीं सकती। बनाने की कल्पना ही ईर्ष्या में नहीं होती है।
मैंने सुना है कि एक आदमी मरा। मरते समय उसने अपने बेटों को इकट्ठा किया और उनसे कहा कि मुझ मरते हुए बाप की एक इच्छा है, उसे तुम पूरा कर देना। मेरे पास आओ और मुझे वचन दो। लेकिन उसके बड़े बेटे चुपचाप दूर ही बैठे रहे। वे अपने बाप को भलीभांति पहचानते थे। लेकिन छोटा बेटा नहीं जानता था, वह बाप के पास चला गया। बाप ने उसके कान में कहा कि तू ही मेरा असली बेटा है और तुझे मैं एक बड़ा दायित्व सौंप जाता हूं। जब मैं मर जाऊं तो मेरी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में फेंक देना। उसने कहाः क्या मतलब है आपका? तो उस आदमी ने कहा कि जब मेरी आत्मा जा रही होगी स्वर्ग की तरफ तो पड़ोसियों को जेलखाने की तरफ जाते देख कर मुझे बड़ी शांति मिलेगी। मेरा दिल बड़ा तृप्त हो जाएगा। जिंदगी भर से चाहता हूं, इन्हें जेल भेज दूं। मकान एक पड़ोसी के पास बड़ा है, मेरे पास छोटा है। दूसरे पड़ोसी के पास सुंदर घोड़े हैं, मेरे पास नहीं। तीसरे पड़ोसी के पास यह है, चौथे के पास वह

है और मेरे पास नहीं। लेकिन इतना तो कर ही सकता हूं मैं कि मरने के बाद मेरी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में फिंकवा दूं?
अब यह जो आदमी है, ईर्ष्या में जी रहा है। मकान बड़े हो सकते हैं सृजन से, ईर्ष्या से नहीं। हां, ईर्ष्या से बड़े मकान छोटे बनाए जा सकते हैं; लेकिन ईर्ष्या से छोटे मकान बड़े नहीं बनाए जा सकते। ईर्ष्या के पास सृजनात्मक शक्ति नहीं है। ईर्ष्या जो है--मृत्यु की साथी है, जीवन की नहीं। लेकिन सारी दुनिया में समाजवाद का जो प्रभाव है उसकी बुनियाद में ईर्ष्या आधार है। लेकिन मजा यह है कि जिस गरीब को यह ईर्ष्या सता रही है और शायद गरीब को उतनी नहीं सता रही है जितनी अमीर और गरीब के बीच के जो नेता खड़े हैं; उनको सता रही है। यह जो ईर्ष्या इनको सता रही है, वह ईर्ष्या अमीरों के खिलाफ जितना नुकसान पहुंचाएगी; वह बड़ा नहीं है। इसका अंतिम नुकसान गरीबों को ही पहुंचनेवाला है। क्योंकि अमीर जो संपत्ति पैदा कर रहा है वह संपत्ति अंततः गरीब तक पहुंच रही है, पहुंचती है, पहुंच ही जाती है। उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है।
मैं निकल रहा था, एक ट्रेन से। दिल्ली जा रहा था। मेरे कंपार्टमेंट में एक सज्जन थे, रास्ते में एक बड़ा मकान था और उस मकान के आस-पास दस-पांच छोटे झोपड़े थे। उन्होंने मुझे देख कर कहा, देखते हैं आप, यह मकान बड़ा हो गया है, इन मकानों को छोटा करके। मैंने उनसे कहा, आप गलत देख रहे हैं। इस बड़े मकान को बीच से हटा दें तो यह जो आस-पास दस मकान हैं ये बड़े नहीं हो जाएंगे, ये मकान नदारद हो जाएंगे। उस बड़े मकान के बनने की वजह से ये दस मकान भी आस-पास बन जाते हैं, बनने ही पड़ते हैं। कोई मकान अकेला नहीं बनता है। एक बड़ा मकान जब बनता है, दस छोटे मकान बन ही जाते हैं, क्योंकि उस बड़े मकान को बनाएगा कौन? उस बड़े मकान को बीच से हटा दें तो ये दस मकान विदा हो जाएंगे।
दुनिया में दस बच्चे पैदा होते, नौ मरते थे। पूंजीवाद ने उन नौ बच्चों
को भी बचा लिया। आज दस बच्चे होते हैं, सिर्फ एक बच्चा मरता है, नौ बच्चे बच जाते हैं। उन नौ बच्चों की भीड़ इकट्ठी हो गई है। उनके पास छोटे मकान हैं, दुखद है यह बात। उनके पास अच्छे मकान होने चाहिए। लेकिन अच्छे मकान होना का यह सूत्र नहीं है कि बड़े मकान मिटा दिए जाएं। अगर बड़े मकान मिट गए तो मैं आपसे कहता हूं कि ये छोटे मकान विदा हो जाएंगे। ये बड़े मकान के पीछे आए हैं। ये नौ मकान जो बच रहे हैं, दस में से, ये बड़े मकान के बनाने में बच रहे हैं।
मजदूर को काम है, नौकरी है, रहने की जगह है, वह पूंजी के पैदा होने के कारण हुई है। इस पूंजी को बिखेर देने से मजदूर बचेगा नहीं। कोशिश हमें यह करनी चाहिए कि मजदूर भी कैसे पूंजीपति हो जाए। कोशिश हमें यह करनी चाहिए कि छोटे मकान कैसे बड़े हों और अगर छोटे मकान बड़े बनाने हैं तो और बहुत बड़े मकान बनाने पड़ेंगे, तभी ये बड़े हो पाएंगे, अन्यथा ये बड़े नहीं हो पाएंगे। लेकिन कई बार बड़े भ्रांत तर्क पैदा हो जाते हैं।
चीन में जो चल रहा है वह यही खयाल है कि हम सब बड़े मकान मिटा कर छोटे मकानों को बड़ा कर देंगे। नहीं, बड़ा मकान मिट जाएगा और छोटा मकान जिसके पास है अगर वह बड़ा मकान बना सकता होता तो उसने बहुत पहले बड़ा मकान बना लिया होता। वह अपनी लिथार्जी में, अपने तामस में वापस लौट जाएगा।
ख्रुश्चेव ने रूस से विदा होने से पहले अपने पद से जो एक महत्वपूर्ण बात कही है, वह सोचने जैसी है। उसने कहा है, आज रूस के सामने जो सबसे बड़ा सवाल है वह यह है कि रूस में कोई भी काम करने को तैयार नहीं है। रूस के जवान काम करने में बिल्कुल उत्सुक नहीं हैं। बड़ी अजीब बात है कि रूस के मजदूर काम करने में उत्सुक न हों; रूस का जवान काम करने में उत्सुक न हो। लिथार्जी में, आलस में, तामस में वापस लौट रहा है वह। स्टैलिन ने जो उससे काम लिया था वह भी जबरदस्ती था, इसलिए स्टैलिन के मरने के बाद जो व्यवहार स्टैलिन के साथ रूस में हुआ वह बिल्कुल ही तर्कसंगत मालूम पड़ता है। जिस क्रेमलिन के चौराहे पर, जिस रेडस्क्वायर पर जिंदगी भर सलामी ली स्टैलिन ने, उसी स्क्वायर से उसकी गड़ी हुई लाश को उखाड़ कर हटा दिया गया है, क्योंकि जितने दिन स्टैलिन जिंदा था--रूस पर प्रेत की भांति छाया रहा और गहरी

हत्या करता रहा। गहरी हत्या के भय से काम चला, लेकिन हत्या का भय ढीला हुआ, काम बंद हुआ।
पूंजीवाद ने इंसेंटिव पैदा किया है, एक प्रेरणा पैदा की है व्यक्ति
के भीतर कि वह संपत्ति को पैदा करे। संपत्ति को पैदा करने का आकर्षण पैदा किया है। वह आकर्षण पूंजीवाद के विदा होते ही विदा हो जाएगा। हां, एक ही शर्त पर अगर पूंजीवाद पूरी तरह विकसित हो जाए और पूंजीवाद से समाजवाद सहज आए तो यह घटना नहीं घटेगी। ऐसा हो सकता है। अमरीका में ऐसा संभव हो जाएगा। यह कितना विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल मालूम पड़ता है, लेकिन यही सत्य
है कि आने वाले पचास वर्षों में अमरीका रोज समाजवाद की तरफ कदम उठाएगा और रूस रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठाएगा। अमरीका रोज समाजवादी होता जा रहा है बिना जाने, बिना किसी क्रांति के। क्यों? क्योंकि संपत्ति जब अतिरिक्त हो जाती है तो व्यक्तिगत मालकियत व्यर्थ हो जाती है। व्यक्तिगत मालकियत तभी व्यर्थ होती है, जब संपत्ति अतिरिक्त हो जाए, जरूरत से ज्यादा हो जाए। अभी एक गांव में हम जाएं, वहां पानी पर कोई कब्जा नहीं है। लेकिन गांव में पानी बहुत ज्यादा है, लोग कम हैं। कल गांव में पानी कम हो जाए और लोग ज्यादा हो जाएं तो पानी पर व्यक्तिगत मालकियत शुरू हो जाएगी। आज हवा मुक्त है सबके लिए, कल हवा छोटी पड़ जाए, लोग ज्यादा बढ़ जाएं, कल आक्सीजन कम हो जाए और लोग ज्यादा हो जाएं तो जिनके पास सुविधा है, समझ है वे आक्सीजन के टैंक अपने घरों में बंद कर लेंगे। व्यक्तिगत मालकियत शुरू हो जाएगी। संपत्ति पर तब तक व्यक्तिगत मालकियत रहेगी ही जब तक संपत्ति कम है और लोग ज्यादा हैं। एक ही तर्कसगंत, एक ही स्वाभाविक संभावना है व्यक्तिगत संपत्ति के विदा होने की और वह यह है कि संपत्ति पानी और हवा की तरह अतिरिक्त मात्रा में पैदा हो जाए।
यह संभव हो जाएगा। आज भी अमरीका में हम जिसे गरीब कहते हैं वह रूस के मापदंडों के हिसाब से अमीर है। आज जिसे रूस में हम बहुत सुविधा संपन्न कहें वह भी अमरीका के गरीब से पीछे खड़ा हुआ है। लेकिन यह बहुत आकस्मिक नहीं है। लेकिन चिंतनीय तो है ही। क्या यह बहुत विचारणीय नहीं मालूम होता कि पचास वर्ष की समाजवादी व्यवस्था के बाद भी रूस एक बड़ा गरीब मुल्क है? दस सालों से तो अपना भोजन भी खुद पैदा नहीं कर पा रहा है। आप ही अपना भोजन बाहर से मंगा रहे हैं ऐसा नहीं, रूस भी दस सालों से पूंजीवाद मुल्कों से भोजन खरीद रहा है। समाजवादी पेट को भी पूंजीवादी हाथों को ही भरना पड़ेगा, तो समाजवाद का क्या होगा? रूस में लिथार्जी वापस लौट आई है। असल में पूंजीवाद एक व्यक्तिगत प्रेरणा देता है प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति पैदा करने की। वह प्रेरणा खत्म हो जाए तो फिर एक ही रास्ता है पीछे से बंदूक लगाओ, लेकिन पीछे से बंदूक की व्यवस्था स्थाई व्यवस्था नहीं हो सकती है।
मैंने सुना है, ख्रुश्चेव के संबंध में एक मजाक। ख्रुश्चेव एक पार्टी-मीटिंग में बोल रहा था और बोलते वक्त वह स्टैलिन की निंदा कर रहा था। तो एक आदमी ने पीछे से खड़े होकर कहा कि महाशय, स्टैलिन के जिन कामों की आप निंदा कर रहे हैं और कह रहे हैं कि लाखों लोगों की हत्या की, साइबेरिया भेजा, जेल में डाला, सारे मुल्क को खून में डुबो दिया। जो ये बातें आप कह रहे हैं, जब स्टैलिन यह सब कर रहा था तब भी आप स्टैलिन के साथ थे। तब आप कहां चले गए थे? ख्रुश्चेव एक मिनट के लिए चुप हो गया। फिर उसने कहा, जिन महाशय ने यह बात कही है--कृपा करके अपना नाम और पता बता दें। लेकिन वह आदमी फिर नहीं उठा। फिर ख्रुश्चेव ने कहाः आप कृपा करके उठ कर अपनी शक्ल ही दिखा दें, लेकिन उस आदमी का कोई पता नहीं चला। फिर ख्रुश्चेव ने कहा कि जिस वजह से आप अब दोबारा नहीं उठ रहे हैं उसी वजह से मैं भी चुप रह गया था। जिंदा रहना था तो चुप रहना जरूरी था।
पूंजीवाद संपत्ति पैदा करवाता है बड़े सहज ढंग से। किसी के पीछे कोई कोड़ा नहीं है, किसी के पीछे बंदूक नहीं है, लेकिन व्यक्ति की अपनी एक छोटी सी दुनिया है, उसकी अपनी प्रेरणा है। अगर मेरी पत्नी बीमार है तो मैं रात भर काम कर सकता हूं लेकिन अगर कोई मुझसे कहे कि मनुष्यता बीमार है तो मैं सोचूंगा--होगी! मनुष्यता इतने दूर की बात हो जाती है कि उससे कोई संबंध नहीं बनता। उससे कोई प्रेरणा पैदा नहीं होती। अगर मुझसे कोई कहता है कि

मेरे बेटे को पढ़ाना है तो मैं गड्ढा खोद सकता हूं भरी धूप में, लेकिन कोई मुझे कहता है कि मनुष्यता को शिक्षित करना है, तो बात धुएं में खो जाती है। कहीं मेरे ऊपर उसकी कोई चोट नहीं पहुंचती है। अगर कोई मुझसे कहता है कि एक घर बनाना है अपने लिए। अपने लिए छाया करनी है और बगिया बनाना है जिसमें फूल खिलेंगे, तो समझ में आती है बात। जब कोई राष्ट्र के बगीचे की बात करने लगता है तब बात खो जाती है।
आदमी की चेतना का दायरा बहुत छोटा है, वैसे ही जैसे दीये का प्रकाश चार-पांच फुट के आस-पास पड़ता है। ऐसे ही आदमी की चेतना है। उसकी चेतना बहुत छोटे से घेरे पर पड़ती है। जिस घेरे पर पड़ती है, उसी का नाम परिवार है। अभी आदमी परिवार से ज्यादा बड़े घेरे के योग्य नहीं है। परिवार के बाहर जैसा बड़ा घेरा होता जाता है, वैसा ही आदमी सुस्त होता चला जाता है, उसकी प्रेरणा खोती चली जाती है। राष्ट्र, मनुष्यता, मनुष्य-जाति, विश्व इतने बड़े घेरे हैं कि मनुष्य की चेतना पर इनका कोई कहीं परिणाम नहीं होता। पूंजीवाद ने उसकी व्यक्तिगत चेतना के आधार पर संपत्ति के सृजन की एक दौड़ पैदा की है और पूंजीवाद ने संपत्ति पैदा की है, ज्ञान पैदा किया है।
ईसा के मरने के अठारह सौ पचास वर्ष में जितना ज्ञान दुनिया में पैदा हुआ, पूंजीवाद के डेढ़ सौ वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ, इधर पंद्रह वर्षों में उतना ज्ञान पैदा हुआ। पिछले पंद्रह वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ उतना इधर पांच वर्षों में ज्ञान पैदा हुआ है। पुरानी दुनिया जहां अठ्ठारह सौ पचास वर्ष मे जितना काम करती थी वह पूंजीवाद की दुनिया पांच वर्ष में पूरा कर रही है। एक चमत्कार है, लेकिन हम पूंजीपति को गाली दिए जा रहे हैं बिना यह समझे कि वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां से संपत्ति बरस जाएगी। वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां वह प्रत्येक व्यक्ति को संपत्ति के सृजन में संलग्न कर देगा। वह मार्ग तैयार कर रहा है जहां से धीरे-धीरे संपत्ति अतिरेक में, एफ्लुएंस में हो जाएगी और जिस दिन संपत्ति अतिरिक्त हो जाएगी, उस दिन पूंजीवाद का बेटा सहज पैदा होगा।
मैं जब समाजवाद से सावधान की बात करता हूं तो मेरा मतलब है गर्भ का काल पूरा होने दें। पूंजीवाद गर्भ का काल है, उसके नौ महीने पूरे हो जाने दें। पूंजीवाद की ऐतिहासिक प्रक्रिया को पूरा हो जाने दें। मार्क्स को भी कल्पना न थी कि रूस से पूंजीवाद समाप्त होगा, क्योंकि रूस में तो पूंजीवाद था ही नहीं। मार्क्स की कल्पना ही नहीं थी कि चीन साम्यवादी हो जाएगा, क्योंकि चीन तो अत्यंत दरिद्र था। मार्क्स की भी कल्पना थी कि अमरीका या जर्मनी में पूंजीवाद पहले टूटेगा। लेकिन टूटा रूस में; टूटा चीन में। तोड़ने की कोशिश चलती है हिंदुस्तान में। ये सब गरीब मुल्क हैं जिनके पास पूंजी की व्यवस्था ही नहीं है, लेकिन इनके पास गरीबों का बहुत बड़ा समूह है। उस समूह की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है।
मार्क्स का चिंतन तो बहुत वैज्ञानिक था। वह ठीक कह रहा था कि जहां पूंजीवाद अपनी ठीक व्यवस्था को विकसित कर लेगा, वहां से उसको विदा हो जाना पड़ेगा; क्योंकि जब संपत्ति ज्यादा हो जाएगी तो व्यक्तिगत संपत्ति का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। लेकिन उसे पता नहीं था कि जब क्रांतियां होंगी तब पूंजीवाद का, संपत्ति का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। लेकिन उसे पता नहीं था कि जो क्रांतियां होंगी वह पूंजीवाद के संपत्ति के पैदा करने से नहीं, वह गरीब की ईर्ष्या को भड़का कर हो जाएंगी।
जिन मुल्कों में समाजवाद आया, वे गरीब हैं। आना चाहिए था अमरीका में, वहां वैसा समाजवाद नहीं आया, लेकिन वहां एक अर्थ में समाजवाद आ रहा है चुपचाप, साइलेंटली। असल में जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह बैंड-बाजा बजा कर नहीं आता, जो भी महत्वपूर्ण है, वह चुपचाप आता है। बीज टूटता है तो कोई खबर नहीं होती और सूरज निकलता है तो कोई घोषणा नहीं होती। जिंदगी में जो भी महत्वपूर्ण है, चुपचाप आता है। आ जाता है तभी पता चलता है कि आ गया। लेकिन जो भी बैंड-बाजे बजा कर आता, समझना कि कुछ जल्दी आने की कोशिश चल रही है। समाजवाद बैंड-बाजे बजा कर आना चाहता है और बिना इस बात को जाने हुए कि पूंजीवाद पूरा न हो तो समाजवाद नहीं आ सकता है।

आज हिंदुस्तान में वह संपत्ति को बांट ले और पूंजी की बढ़ती हुई बनती हुई बिल्कुल प्राथमिक व्यवस्था को तोड़ दे, तो क्या होगा। गरीब की ईर्ष्या तुष्ट होगी, लेकिन गरीब और गरीब होगा। गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब भूखों मरेगा। गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी, लेकिन गरीब अपने हाथे से आत्मघात कर लेगा।
हिंदुस्तान में पूंजी की बनती हुई व्यवस्था को सब तरह का सहयोग चाहिए। आज तो हिंदुस्तान को पूंजीवाद होने का ठीक अर्थों में निर्णय लेना चाहिए कि हम पचास वर्ष में ठीक पूंजीवाद पैदा कर लें। समाजवाद उसके पीछे आने ही वाला है, अपने आप आ जाएगा। उसे लाने को किसी इंदिर ाजी की जरूरत नहीं पड़ेगी, उसे लाने के लिए किसी की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह आ जाएगा, क्योंकि मेरी समझ ऐसी है कि पूंजीवाद कौन लाया? पूंजीवाद आया। जब सामंतवाद की व्यवस्था उस जगह पहुंच गई तो पूंजीवाद आया। समाजवाद को लाने की जरूरत नहीं है। समाजवाद भी आएगा लेकिन धैर्य चाहिए। वह धैर्य बिल्कुल नहीं है और अधैर्य इतना नुकसान कर सकता है, जिसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। फिर कौन हिसाब लगाएगा?
मैंने सुना है, एक बार रथचाइल्ड के पास एक समाजवादी गया और उसने जाकर कहा कि तुमने सारे देश की संपत्ति हड़प कर ली है। बांट दो तो सारा देश अमीर हो जाएगा। रथचाइल्ड ने उसकी बात सुनी, कागज पर कुछ हिसाब लगाया और उससे कहा कि यह छह पैसे आपके हिस्से पड़ते हैं, आप लीजिए और जो-जो आएंगे उनके हिस्से जो पड़ता है, उनको देता जाऊंगा। मेरे पास जितनी संपत्ति है, अगर मैं सारी दुनिया में बांटूं तो एक-एक आदमी को छह-छह पैसे बांट दूंगा। जो भी आएगा इनकार नहीं करूंगा, लेकिन क्या आप सोचते हैं कि ये छह पैसे आपको मिल जाएंगे तो समाजवाद आ जाएगा? लेकिन रथचाइल्ड तो छह पैसे भी दे सकता था। बिड़ला, टाटा, साहू, डालमिया के पास छह पैसे भी नहीं हैं। हमारे पास पूंजीपति ही नहीं है, पूंजीपति बिल्कुल अंकुरित हो रहा है। आज बंबई में थोड़ी सुविधा दिखाई पड़ती है, लेकिन बंबई हिंदुस्तान नहीं है।
हिंदुस्तान पूरा का पूरा गरीब देश है और हिंदुस्तान पूरा का पूरा इस तरह जी रहा है जैसे औद्योगिक क्रांति के पहले यूरोप था। अभी औद्योगिक क्रांति भी यहां नहीं हो पाई और हम सपने देख रहे हैं आगे के। औद्योगिक क्रांति हो, सारा मुल्क उद्योग से भर जाए, सारा मुल्क संपत्ति पैदा करे, सारे मुल्क में करोड़ों छोटे-बड़े टाटा-बिड़ला हों तो ही वे सपने पूरे हो सकते हैं। संपत्ति मुल्क में पैदा हो जाए तो कोई टाटा, कोई बिड़ला संपत्ति के विभाजन को न रोक पाएंगे। बल्कि मेरी समझ तो यह है कि वे ही संपत्ति इतनी पैदा कर जाएंगे कि वह बांटी जा सके, अन्यथा वह बांटी भी नहीं जा सकती। समाजवाद से सावधान होने का यह मतलब नहीं है कि मैं समाजवाद का शत्रु हूं। मैं तो समझता हूं, आज जो समाजवादी हैं वे समाजवाद के शत्रु हैं, क्योंकि उन्हें पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। वे जिस शाखा को काट रहे हैं उसी पर बैठे हुए हैं। वे गिरेंगे, अपने साथ सबको लेकर डूब जाएंगे। हिंदुस्तान बहुत लंबे समय से गरीब है। सोच-विचार कर कदम उठाना। कहीं ऐसा न हो कि जो संपत्ति पैदा हो रही है, उसकी व्यवस्था टूट जाए। और उसे रोज टूटता देखते हैं, लेकिन हम अंधे मालूम होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि हमने तय कर लिया है कि हम आंख खोल कर नहीं देखेंगे। सरकार जिस काम को हाथ में लेती है, वही नुकसान पहुंचाने लगता है। निजी उद्योगों में जितनी संपत्ति लगी है, सरकारी उद्योगों में उससे दुगुनी लगी है; लेकिन सब सरकारी उद्योग नुकसान पहुंचा रहे हैं और सरकार कहती है कि बाकी जो निजी उद्योग हैं वे भी सरकार के हो जाएं तो हम लाभ ही लाभ पहुंचा देंगे।
यह भी ध्यान रहे कि समाजवाद की आड़ में कौन खड़ा है। समाजवाद की बात चलती है, लेकिन जो आता है वह होता है राज्यवाद। समाजवाद का नाम चलता है, सोशलिज्म का, लेकिन जो आता है वह होता है स्टेट कैपिटलिज्म, वह होता है राज्य-पूंजीवाद। समाजवाद का मतलब है समाज के हाथ में संपत्ति हो, लेकिन समाज के हाथ में संपत्ति कहां आती है? हां, समाज के हाथ से सारी संपत्ति राज्य के हाथों में पहुंच जाती है। जहां बंटे हुए पूंजीपति थे बहुत, वहां एक ही पूंजीपति रह जाता है--राज्य, और राज्य की कुशलता हम देख रहे हैं। हमारे मुल्क में राज्य जितना अकुशल है, उतना गांव का छोटा सा दुकानदार भी

अकुशल नहीं है। आज राज्य कितना मूढ़ सिद्ध हो रहा है, उतना हिंदुस्तान का साधारण सा किराना बेचने वाला और ठेले पर काम करने वाला आदमी भी उतना मूढ़ नहीं है। इस राज्य के हाथ में सारी संपत्ति दे देने का खयाल है, सारे उत्पादन के स्रोत दे देने का खयाल है। अगर हिंदुस्तान ने मरने का ही तय कर रखा है, तब बात दूसरी है!
इस राज्य के हाथों में जाकर खतरा होगा और यह भी ध्यान रहे कि राज्य की सत्ता जिनके हाथ में है, वे वैसे ही पागल हो जाते हैं। लेकिन अब वे संपत्ति की सत्ता को भी दूसरों के हाथों में देखने के लिए राजी नहीं हैं इसलिए संपत्ति की सत्ता भी अपने हाथ में चाहते हैं। असल में राज्य के मद में जो पागल हैं, वे चाहते हैं कि संपत्ति की ताकत भी उनके हाथ में हो, तब संपूर्ण शक्ति उनके हाथ में हो जाती है--धन की भी। राज्य की भी अकेले राज्य की शक्ति ही उन्हें दीवाना कर देती है, धन की शक्ति भी उनके हाथ में पहुंच जाए तब वे निरंकुश हो जाते हैं। फिर उनके ऊपर कुछ भी नहीं किया जा सकता। आखिर स्टैलिन को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका, हिटलर को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका।
क्या आपको पता है, हिटलर भी सोशलिस्ट था? उसकी पार्टी का नाम भी नेशनल सोशलिस्ट पार्टी था! वह भी समाजवादी था। माओ को हटाने के लिए भी कुछ नहीं किया जा सकता। और यह भी ध्यान रहे कि आज दुनिया में राज्य के हाथ में इतनी ताकतें हैं कि अगर धन की ताकत भी उसके हाथ में चली जाए तो व्यक्ति बिल्कुल नपुंसक--इंपोटेंट हो जाता है। पूरा राष्ट्र नपुंसक हो जाता है। फिर व्यक्ति के पास कोई शक्ति नहीं रह जाती।
यह शायद आपको पता न हो कि राजनीतिक स्वतंत्रता हो, आर्थिक स्वतंत्रता हो, तो ही व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता शेष रहती है। अगर आर्थिक और राजनीतिक शक्तियां एक ही ग्रुप के हाथ में चली जाएं तो व्यक्ति के पास विचार की कोई स्वतंत्रता नहीं रह जाती। रूस में विचार की कोई स्वतंत्रता नहीं है। चीन में भी नहीं है, हिंदुस्तान में भी कल नहीं होगी। लेकिन यह एक-एक कदम आती हैं बातें, पहले से पता नहीं चलता है।
एक व्यक्ति की संपत्ति छीन लो, संपत्ति के छिनने के साथ ही उसके व्यक्तित्व का नब्बे प्रतिशत हिस्सा समाप्त हो जाता है। नब्बे प्रतिशत विदा हो गया! संपत्ति छिनते ही उसके सोच-विचार की क्षमता भी छिन जाती है, क्योंकि उसके पास व्यक्ति होने की सामर्थ्य ही क्षीण हो गई। राज्य के पास सारी ताकत पहुंच जाए तो व्यक्ति की हत्या हो जाएगी। इस समय सारी दुनिया में, इस देश में भी, सबसे बड़ा सवाल जो है वह यह है कि व्यक्ति को कैसे बचाया जाए। राज्य हड़प लेना चाहता है सब, लेकिन इस ढंग से हड़पता है और वह लोगों को समझा कर हड़पता है। वह कहता है, तुम्हारे ही हित में हड़प रहे हैं। यह जो हम संपत्ति और उत्पादन के साधन अपने हाथ में लेते हैं वह तुम्हारे लिए, इसलिए जयजयकार भी होगा और वे ही लोग जयजयकार करेंगे जिनकी गर्दन पर फंदा कसा जा रहा है। वे ही लोग जयजयकार करेंगे जो फांसी पर लटक जाएंगे। उन्हें पता भी नहीं चलेगा। संपत्ति एक बार राज्य के हाथ में चली गई तो राज्य निरंकुश है, फिर राज्य के सामने व्यक्ति की क्या सामर्थ्य है, फिर व्यक्ति की क्या हैसियत, व्यक्ति की क्या आत्मा है?
रूस में पचास साल से पचास आदमियों का एक छोटा सा ग्रुप, एक छोटा सा समूह मालिक बन बैठा है। उस ग्रुप के हाथ के बाहर ताकत नहीं जाती है। स्टैलिन मरे, चाहे ख्रुश्चेव आ जाएं, चाहे कोसीगिन रहें, चाहे ब्रुझनेव हों, कोई भी हो, वह एक पचास आदिमियों का छोटा सा गु्रप सारे मुल्क की छाती पर हावी है। कोई इनकार नहीं हो सकता, क्योंकि विरोध करने के पहले जबान कट जाए, इनकार करने के पहले आदमी का कोई पता न चले। राज्य के हाथ में जब पूरी शक्ति हो तो व्यक्ति क्या कर सकेगा? इसलिए ध्यान रहे, राज्य की शक्ति निरंतर कम करनी है, बढ़ानी नहीं है; क्योंकि अंततः एक ऐसा समाज चाहिए जिसमें राज्य एक कामचलाऊ व्यवस्था मात्र रह जाए।
मैं नहीं सोचता कि एक खाद्यमंत्री का कोई ज्यादा मूल्य होना चाहिए। क्या मूल्य होना चाहिए? घर में एक रसोइए का जो मूल्य होता है, प्रांत के लिए रसोइए का--वही मूल्य है खाद्यमंत्री का। वह एक बड़ा रसोइया है। अगर अच्छा खाना प्रांत को खिलाता है तो कभी-कभी उसकी प्रशंसा करनी चाहिए,

लेकिन रसोइए से ज्यादा नहीं। कभी टिप भी देनी चाहिए उसको, लेकिन रसोइए से ज्यादा नहीं। लेकिन खाद्यमंत्री रसोइया नहीं है। उसके पास ताकत है। लेकिन वह यह जानता है कि उसकी ताकत में एक कमी है और वह कमी यह है कि लोगों के पास व्यक्तिगत संपत्ति है और व्यक्तिगत संपत्ति बगावत कर सकती है और व्यक्तिगत संपत्ति विरोध कर सकती है और जिसके पास व्यक्तिगत संपत्ति है उसके पास व्यक्तिगत सोच-विचार का मौका है। यह भी वह छीन लेना चाहता है। राजनीतिज्ञ बहुत एंबीशियस है। वह बहुत महत्वाकांक्षी है। वह सारी शक्ति को अपने हाथ में ले लेना चाहता है। जिस दिन राज्य के हाथ में पोलिटिकल पॉवर और इकॉनामिक पॉवर दोनों हो जाते हैं, उस दिन क्रांति का, बगावत का, विद्रोह का कोई उपाय नहीं रह जाता।
यह कैसे मजे की बात है कि रूस में क्रांति हुई, लेकिन रूस अब अकेला मुल्क है जहां क्रांति नहीं हो सकती; क्योंकि राज्य के पास इतने अदभुत साधन हैं। सब दीवारों के पास कान हैं। राज्य का जाल सब तरफ फैला हुआ है। पति भी अपनी पत्नी से बोलते वक्त दो दफा सोच लेता है कि वह जो कह रहा है; वह कहना है, नहीं कहना है; क्योंकि क्या भरोसा, पत्नी खबर कर दे। बाप अपने बेटे से भी खुल कर बात नहीं कर पाता, क्योंकि खुल कर बात करना खतरनाक है। हो सकता है बेटा यंग कम्युनिस्ट हो, जवान कम्युनिस्ट के ग्रुप का सदस्य हो और खबर पहुंचा दे। क्योंकि एक-एक बेटे को समझाया जा रहा है, कि बाप की कोई कीमत नहीं है, कीमत है राष्ट्र की। पत्नी की कोई कीमत नहीं है, कीमत है समाज की।
समाजवाद एक बड़ी भ्रांत बात समझा रहा है कि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है, जब कि एकमात्र कीमत व्यक्ति की है। समाज है क्या? समाज एक कोरा शब्द है, व्यक्ति है वास्तविक, व्यक्ति है यथार्थ। समाज तो सिर्फ जोड़ है। लेकिन समाजवाद ने इतना शोरगुल मचाया है कि जो नहीं है उसकी कीमत है--समाज की; और जो है उसकी कोई कीमत नहीं है--व्यक्ति की; कोई कीमत नहीं है। इसलिए व्यक्ति को समाज की बलिवेदी पर चढ़ाया जा सकता है। हमेशा से व्यक्ति को चढ़ाया जाता रहा है ऐसे देवताओं के लिए, जो नहीं हैं--कभी भगवान के लिए, कभी काली के लिए, कभी किसी यज्ञ में। अब नया देवता है समाज और उसके पीछे असली देवता खड़ा है राज्य। इन पर व्यक्ति को चढ़ाया जा रहा है। काट डालो सबको, क्योंकि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है, कीमत है समाज की।
समाज कहां है? उससे कहीं मिलना नहीं हुआ। बहुत खोजता हूं, सब जगह जाता हूं। पूछता हूं, समाज कहां है? जगह-जगह पता मिलता है कि वहां मिलेगा। वहां जाता हूं, वहां भी व्यक्ति ही मिलते हैं। जब भी मिलेगा, व्यक्ति मिलेगा। व्यक्ति का मूल्य चरम है--अल्टीमेट वैल्यू है। व्यक्ति के मूल्य को खोना खतरनाक है। हां, निश्चित ही किसी दिन समाजवाद आऐगा, लेकिन व्यक्ति को समाप्त करके नहीं, व्यक्ति को तृप्त करके, व्यक्ति को फुलफिल करके, व्यक्ति को पूरा करके। व्यक्ति को मिटा करके जो समाजवाद आता है, उससे सावधान होने की जरूरत है। वह समाजवाद नहीं है, वह व्यक्ति की हत्या है और समाजवाद के पीछे खड़ा है स्टेट, खड़ा है राज्य और खड़े हैं राजनीतिज्ञ। उनको कठिनाई मालूम होती है कि ताकत कहीं भी बंटी हो। सारी ताकत उनके हाथ में होनी चाहिए। और यह ध्यान रहे, यह अंतिम बात आज कहना चाहता हूं कि राज्य के पास इतनी ताकतें कभी भी न थीं, जितनी आज हो सकती हैं। क्योंकि टेक्नालॉजी ने ऐसा विकास किया है, जिसका हमें पता नहीं।
अभी मेरे एक मित्र ने एक चित्र मेरे पास भेजा। वह चित्र देख कर मैं कांप गया। उस रात मैं सो नहीं सका, बहुत चिंतित हो उठा, लेकिन शायद ही कहीं कोई चिंता उस संबंध में हुई हो। सारी दुनिया में खबरें छपीं। एक वैज्ञानिक ने एक घोड़े की खोपड़ी को काट कर उसमें एक इलेक्ट्रोड रख दिया है, एक यंत्र रख दिया है भीतर, खोपड़ी बंद कर दी गई। घोड़े को कुछ पता नहीं। अब वायरलेस से उस घोड़े को कहीं से हजारों मील दूर से इशारा किया जा सकता है। जो भी इशारे किए जाएंगे घोड़े को वही करना पड़ेगा, क्योंकि घोड़े को लगेगा कि वे इशारे उसके भीतर से आ रहे हैं। हजार मील दूर से वह वैज्ञानिक कहे कि घोड़ा पैर उठाए, इशारा करे पैर उठाने के तो घोड़ा पैर उठाएगा। कहे, नाचो, तो वह नाचेगा।

एक मित्र ने मुझे वह तस्वीर भेजी और उसने कहा कि कितना बड़ा आविष्कार है। मैंने उसे वापस तस्वीर भेजी और लिखा कि अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण! क्योंकि राज्य यह इलेक्ट्रोड आज नहीं कल आदमी की खोपड़ी में भी लगा देगा। पता नहीं चलता न! फिर विद्रोह असंभव है। केमिकल रिवोल्यूशन हो रहा है, कुछ ऐसे ड्रग्स खोज लिए गए हैं जो क्रांति को असंभव कर दें, क्योंकि यह बात पकड़ ली गई है कि जो लोग विद्रोही होते हैं, उनके शरीर में, उनके व्यक्तित्व में कुछ तत्व होते हैं जो गैर-विद्रोह में नहीं होते। तो अब ऐसे ड्रग्स एल एस डी, मेस्कलीन हैं ये, और-और ड्रग्स भी खोजे जा रहे हैं। कल यह हो सकता है कि आपके गांव के रिजर्वायर में, तुलसीलेक में, पवईलेक में केमिकल्स डाल दिए जाएं, पूरा गांव पिए, पता भी न चले कि पानी में कुछ है और गांव में सारे व्यक्तियों के भीतर से वे तत्व क्षीण हो जाएं जो बगावत कर सकते हैं, जो कह सकते हैं, "नो", नहीं, वे तत्व विदा हो जाएं!
राज्य के हाथ में आज पूरी ताकत जाना बहुत खतरनाक है, क्योंकि उसके पास इतनी टेक्नालॉजी है कि व्यक्ति को बिल्कुल ही पोंछ सकता है। माइंड-वॉश की नई-नई ईजादे हैं। किसी भी आदमी की स्मृति पोंछी जा सकती है। छह महीने आदमी को बंद कर दिया जाए और इलेक्ट्रिक के शॉक हैं, केमिकल्स ड्रग्स हैं और माइंड-वॉश के मेथड्स हैं, उससे उसकी स्मृति पोंछी जा सकती है। अगर वह कहता है कि मैं विरोधी हूं तो उसकी स्मृति विदा हो जाएगी, उसे पता ही नहीं रहेगा कि मैं कौन हूं। अगर वह कहता है कि मेरा यह खयाल है तो उसका वह खयाल खो जाएगा, क्योंकि वह यही नहीं बता सकेगा कि मैं कौन हूं, मेरा खयाल क्या है। वह छोटा बच्चा हो जाएगा, उसको क ख ग से फिर सीखना पड़ेगा। उसे भाषा, नाम सब फिर से सीखने पड़ेंगे।
जब इतनी ताकत विज्ञान दे रहा हो राज्य को, और धन की भी सारी ताकत राज्य
के हाथ में हो, और प्रशासन की भी सारी ताकत राज्य के हाथ में हो, तो हम अपने हाथ से मनुष्य की हत्या का आयोजन कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ इस योग्य नहीं है। सच तो यह है कि राजनीतिज्ञ ने मनुष्य के इतिहास में जो किया है, उससे सिवाय अयोग्यता के उसने योग्यता कभी भी सिद्ध नहीं की। राजनीतिज्ञ के हाथ से सत्ता वापस लौटनी चाहिए, उसे बढ़ाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह भी जानता है कि अगर वह कहे कि राज्य के हाथ में सब होना चाहिए तो लोग कहेंगे कि नहीं, तो वह एक दूसरा चेहरा बनाता है, वह कहता है समाज के हाथ में सब होना चाहिए। समाज के पास तो कोई हाथ नहीं है, इसलिए फिर राज्य के हाथ में ही सब चला जाता है।
आज सोशलिज्म के नाम से दुनिया में जो भी चल रहा है, वह स्टैट कैपिटलिज्म है, वह राज्य-पूंजीवाद है। और मैं मानता हूं कि राज्य-पूंजीवाद से व्यक्ति-पूंजीवाद श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ इसलिए है कि व्यक्ति स्वतंत्र है, श्रेष्ठ इसलिए है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूंजी पैदा करने की प्रेरणा है, श्रेष्ठ इसलिए है कि शक्ति विभाजित और विकेंद्रित है, श्रेष्ठ इसलिए है कि संपत्ति अगर कल अतिरिक्त मात्रा में पैदा हुई तो समाजवाद आएगा, आना चाहिए। लेकिन लाना नहीं है, आना चाहिए। लाया हुआ समाजवाद खतरनाक सिद्ध होगा। आने दें, लेकिन आएगा कैसे?
एक माली को बीज में से अंकुर निकालना है, तो अंकुर आएगा कि निकालना पड़ेगा? अगर निकाला, तो संभावना है बीज भी टूट जाए और अंकुर न निकले। लेकिन आने देना है तो माली क्या करे? माली वह व्यवस्था करे जिससे अंकुर आता है। व्यवस्था करे खाद की, बीज को डाले जमीन में, पानी डाले, सूरज को आने दे, झाड़ को हटा दे--आएगा बीज, जरूर आ जाएगा, अंकुर भी फूटेगा, वृक्ष भी बड़ा होगा। अगर समाजवाद लाना हो तो पूंजीवाद के बीज को ठीक से सिंचित करने की जरूरत है। यह मेरी बात लोगों को उलटी मालूम पड़ती है। पर यह उतनी ही सीधी और साफ है। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित होता है तो उसके भीतर से समाजवाद आता ही है, लेकिन पूंजीवाद अपना काम पूरी तरह कर ले तब विदा हो।
लेकिन आज तो पूंजीवाद जो है वह भी डरा हुआ है। वह भी हिम्मत से नहीं कह सकता कि पूंजीवाद के होने का भी कोई कारण है। वह भी कहता है कि नहीं, समाजवाद ठीक है। उसके पास भी अपना दर्शन नहीं है। वह भी भयभीत है, वह भी चारों तरफ भीड़ से डरा हुआ है। वह भी नारे और झंडे और आवाजों से घबरा गया

है। वह कहता है, तो समाजवाद ही ठीक। बड़े से बड़ा पूंजीपति, मैं देखता हूं, वह घबड़ा रहा है। उसे लग रहा है कि उसने कोई पाप किया है।
बड़े आश्चर्य की बात है। पूंजीपति ने इतने बड़े समाज को जिंदा रखने की व्यवस्था की, इतने अधिक मनुष्यों को जीवित रखने का उपाय किया, संपत्ति पैदा की, गुलामी खत्म की, मनुष्य की जगह मशीन को लाने का उपाय किया और अंततः समाजवाद उससे आएगा, लेकिन वही पूंजीवाद की व्यवस्था में जो कारीगर है वह भी घबरा गया है। आइजनहावर ने लिखा है कि एक कम्युनिस्ट से मैं बातें करता था तो मैं उत्तर नहीं दे पाता था, क्योंकि मुझे भी लगता तो यही था कि यही ठीक कह रहा है। आइजनहावर के पास भी तर्क नहीं है। पूंजीवाद के पास तर्क नहीं है, पूंजीवाद के पास दर्शन नहीं है तो पूंजीवाद मरेगा।
मैं चाहता हूं, पूंजीवाद के पास अपना तर्क हो, अपना दर्शन हो, ताकि वह ठीक से जी सके और समाजवाद को जन्म देने योग्य हो सके। समाजवाद पूंजीवाद की संतान है और बाप अगर अस्वस्थ रहे तो ध्यान रखना, बेटा स्वस्थ होने वाला नहीं है। लेकिन बाप को मार कर बेटे को पैदा करने की कोशिश चल रही है। मां की हत्या करके गर्भ निकालने की कोशिश चल रही है। इन सब नासमझों से सावधान होने की जरूरत है।
संबंधित विषय पर आगे हर कोण से, हर पहलू से चार लंबी वार्ताओं में अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हूं। एक-एक बात पुनर्विचार करने के योग्य है, एक-एक विचार से ठीक समझ लेने, सोचने योग्य है। जरूरी नहीं है कि जो मैं कहूं वह ठीक ही हो। वह गलत हो सकता है, इसलिए सोचने के लिए निमंत्रण से ज्यादा मेरा कोई आग्रह नहीं है। सुहृदय श्रोता यदि समाजवाद पर इस दृष्टि से सोच सकें, तो शायद वह पूरे देश के भी काम आ सकता है।

समाजवाद से सावधान
दूसरा प्रवचन

धर्म-विरोधी तथाकथित समाजवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि हम तो स्वयं की आत्मा को पाना चाहते हैं, और आपने कल जो बातें कहीं उनसे स्वयं की आत्मा को पाने का क्या संबंध है?

संबंध अवश्य है। आज रूस में या चीन में अपनी आत्मा को पाने का कोई उपाय नहीं रह गया है और अगर आज रूस या चीन में मार्क्स भी पैदा होना चाहे तो पैदा नहीं हो सकता। महावीर, बुद्ध, मोहम्मद और क्राइस्ट के पैदा होने की तो बात बहुत दूर है। स्वयं मनुष्य की आत्मा की खोज भी स्वतंत्रता की एक हवा में संभव है। मनुष्य की आत्मा की स्वीकृति भी, जिसे आप समाजवाद कहते हैं, वह नहीं देता है। समाजवाद मौलिक रुप से भौतिकवादी जीवन व्यवस्था है। समाज की मौलिक धारणाओं में एक यह भी है कि मनुष्य पदार्थ से ज्यादा नहीं है। इस बात को थोड़ा समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि मेरी समझ में ऐसा समाजवाद, जो मनुष्य की आत्मा को स्वीकृति नहीं देता, बहुत घातक सिद्ध होगा।

उन मित्र ने आगे पूछा है कि यदि हमें अपनी आत्मा को खोजना है तो समाजवाद की आलोचना का इससे क्या संबंध है?

यह संबंध गहरा और सीधा है। समाजवाद मनुष्य-जाति के इतिहास में आत्मा
के विरोध में खड़ा हुआ सबसे बड़ा विचार है। दुनिया में नास्तिकता कभी भी सफल नहीं हो पाएगी और दुनिया में कोई नास्तिक समाज, कोई नास्तिक संगठन, कोई नास्तिक देश चरम आत्मिक संभावनाओं को प्राप्त नहीं कर सका। इसका कारण यह है कि नास्तिकों ने सीधे ही आत्मा और परमात्मा पर हमला बोल दिया। वे हार गए, जीत नहीं सके; लेकिन साम्यवाद ने पीछे के रास्ते से हमला बोला है और साम्यवाद ने पहली बार जमीन पर एक नास्तिक देश और एक नास्तिक समाज को पैदा कर दिया है। चार्वाक नहीं जीता, एपीकुरस नहीं जीता। जहां दुनिया के नास्तिक हार गए वहां मार्क्स, लेनिन और एंजिल्स जीत गए। रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि साम्यवाद पीछे के दरवाजे से नास्तिकता को लाता है। वह धर्म का सीधा विरोध नहीं करता है, वह सीधा विरोध धनपति का करता है और पीछे से वह यह कहता है कि अगर धनपति को मिटाना है तो धर्म को मिटाना जरूरी है, क्योंकि धर्म को बिना मिटाए धनपति को नहीं मिटाया जा सकता। वह यह भी कहता है कि अगर धनपति को समाप्त करना है तो अब तक की जो विचारधाराएं धनपति को खड़े होने का आधार बनती थीं, उनको भी गिरा देना होगा। मार्क्स की भी मान्यता थी कि सब दृष्टिकोण वर्गीय होते हैं। अगर धनपति धर्म की बात करता है तो सिर्फ इसीलिए करता है कि धर्म उसकी सुरक्षा बन जाएगा। यह धारणा आमूल भ्रांत है। धर्म का वर्ग से कोई संबंध नहीं है, न ही दर्शनों का। उत्पादन व्यवस्थाओं से बंधा है।
लेकिन मार्क्स की अतिस्थूल भौतिकवादी दृष्टि ऐसा ही देख सकती थी। इसलिए उसने पूंजीवाद को हटाने के लिए धर्म को हटाने का भी विचार दिया। उसकी दृष्टि मनुष्य के भीतर आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है--इस विचार के कारण ही तो स्टैलिन इतनी हत्याएं करने में सफल हुआ है, क्योंकि यदि आदमी केवल पदार्थ है, तो गर्दन काटने में कोई भी नहीं कटता है। पदार्थ न मरता है, न कटता है। माओ भी सुविधा से हत्या कर सकता है, क्योंकि आदमी सिर्फ पदार्थ है, वहां पीछे कोई आत्मा नहीं है। साम्यवादी पहली बार दुनिया में निस्संकोच बिना अंतःकरण की किसी पीड़ा के हत्या करने में सफल हो सके। उसका कारण केवल यही है कि आदमी की आत्मा को इनकार ही कर दिया गया है और आदमी की आत्मा के विकास और आविष्कार की जो सम्भावनाएं है वे भी क्षीण करने का प्रयत्न निरंतर चलता रहा है। इस संबंध में भी दो बातें समझ लेनी आवश्यक हैं।

पहली बात तो यह समझ लेनी आवश्यक है कि मनुष्य के भीतर जो आत्मा है उसको भी प्रकट होने के लिए सुविधाएं और परिस्थितियां चाहिए। एक बीच के भीतर पौधा छिपा हुआ है, लेकिन अभी बीच को तोड़ देंगे तो पौधा मिलेगा नहीं। पौधा छिपा है जरूर, लेकिन प्रकट होने के लिए व्यवस्था चाहिए, पानी चाहिए, खाद चाहिए, जमीन चाहिए, सूरज की किरणें चाहिए, कोई प्रेम करने वाला चाहिए जो उस बीज के भीरत से पौधे को प्रकट कर पाए। प्रत्येक आदमी के भीतर आत्मा बीज की तरह है। आदमी को काटने से मिलेगी नहीं, इसलिए प्रयोगशाला में आदमी की आत्मा कभी भी न पाई जा सकेगी। मैंने सुना है, मार्क्स ने कभी मजाक में कहा था कि मैं तुम्हारे ईश्वर को मान लूंगा अगर प्रयोगशाला की टेस्ट-ट्यूब में ईश्वर को पकड़ कर बताया जा सके और फिर उसने यह भी कहा, ध्यान रहे, भूल कर कहीं अपने ईश्वर को प्रयोगशाला की टेस्ट-ट्यूब में ले मत आना, क्योंकि जो ईश्वर टेस्ट-ट्यूब की पकड़ में आ जाएगा वह ईश्वर ही क्या रह जाएगा।
नहीं, ईश्वर को टेस्ट-ट्यूब में नहीं पकड़ा जा सकेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नहीं है। टेस्ट-ट्यूब बहुत छोटी चीज है और आदमी के शरीर को काट कर भी हम उसकी आत्मा को नहीं पकड़ पाएंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नहीं है। अगर मेरे मस्तिष्क को अभी काट दिया जाए तो वहां कोई विचार जैसी चीज नहीं मिलेगी। लेकिन विचार है। अगर आपके हृदय को काटा जाए तो वहां प्रेम जैसी कोई चीज नहीं मिलेगी, लेकिन प्रेम है। प्रमाण क्या है? प्रयोगशाला में कहीं पकड़ में आता है?
आप सिद्ध नहीं कर सकते है कि प्रेम है, क्योंकि हृदय के खोजने से, तोड़ने-फोड़ने से कहीं उसका कोई पता नहीं चलता, लेकिन फिर भी आप जानते हैं कि वह है और आप कहेंगे कि दुनिया भर की प्रयोगशालाएं सिद्ध कर दें कि प्रेम नहीं है तो भी मैं मानने को राजी नहीं हूं, क्योंकि मैंने प्रेम को जाना है--अनुभव है, पदार्थ के पार है। लेकिन समाजवाद का बुनियादी आधार अनात्मवाद है और एक बार किसी समाज ने यह स्वीकार कर लिया कि आत्मा नहीं है तो वह बीज बोना बंद कर देगा, क्योंकि जब बीज--अंकुर है ही नहीं तो फिर बीज को बोने की जरूरत नहीं है।
मनुष्य-जाति के ऊपर सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह होगा कि यदि यह स्वीकृत हो जाएगा, कि आत्मा नहीं है तो आत्मा का प्रकट होना निरंतर धीरे-धीरे बंद हो जाएगा, बीज पड़े-पड़े सड़ जाएंगे, लेकिन उनसे अंकुर नहीं आएंगे। अगर लोगों ने यह मान लिया कि बीजों में वृक्ष होते ही नहीं तो कौन बीज को बोएगा, कौन बीज को पानी देगा, कौन बीज को बड़ा करेगा?
समाजवाद की सबसे खतरनाक धारणा उसका शरीरवाद है। और यह भी ध्यान रहे
कि आत्मा को प्रकट होने के लिए जो सुविधाएं चाहिए वह समाजवाद छीन लेता हैः अभी जो समाजवाद आएगा वह निश्चित छीन होगा, क्योंकि अभी समाजवाद को लाने के लिए पहली आवश्यकता तो यह है कि आदमी की स्वतंत्रता छीन ली जाए। और आदमी की स्वतंत्रता का बहुत बड़ा हिस्सा उसकी आर्थिक स्वतंत्रता है। अर्जन की स्वतंत्रता, अर्जित के स्वामित्व की स्वतंत्रता आदमी की मूलभूत स्वतंत्रता है। मैं जो पैदा करूं वह मेरा हो सके, मैं जो निर्मित करूं वह मेरा हो सके।
मनुष्य की बुनियादी स्वतंत्रता है उसकी आर्थिक स्वतंत्रता। उसके हाथ
से आर्थिक स्वतंत्रता के छीने बिना समाजवाद स्थापित नहीं हो सकता। हां, यदि पूंजीवाद ठीक से विकसित हो जाए तो किसी आदमी की स्वतंत्रता बिना छीने समाजवाद का जन्म हो सकता है। वह जन्म होगा पूंजी के अत्यधिक हो जाने पर, उसके पहले नहीं। इसलिए अभी दुनिया में कोई भी देश, अमरीका भी, अभी उस हालत में नहीं आ सका है जहां समाजवाद सहज जन्म ले ले। लेकिन अमरीका शायद पचास वर्षों में उस जगह आ जाए। अभी तो हमें बलपूर्वक समाजवाद आरोपित करना पड़ेगा। आरोपित समाजवाद में स्वतंत्रता का हनन होगा और जितनी स्वतंत्रता मरती है, उतनी ही भीतर आत्मा के फैलने की संभावना कम हो जाती है। आत्मा के लिए स्वतंत्रता का आकाश चाहिए और जब आर्थिक स्वतंत्रता छिनती है तो दूसरा हमला मनुष्य की वैचारिक स्वतंत्रता पर होता है, क्योंकि समाजवाद के पक्षधर यह कहते हैं कि अगर हम वैचारिक स्वतंत्रता दें तो हम समाजवादी

व्यवस्था का निर्माण नहीं कर पाएंगे। इसलिए हम समाजवाद से विपरीत विचारधारा को स्वीकार नहीं करेंगे।
रूस में एक ही दल है और कैसे मजे की बात है कि एक ही दल चुनाव भी लड़ता है। इसी कारण स्टैलिन को दुनिया में जितने वोट मिलते थे, उतने किसी आदमी को कभी नहीं मिले। सौ प्रतिशत वोट स्टैलिन को मिलते थे और उसका प्रचार सारे विश्व में किया जाता था कि स्टैलिन को सौ प्रतिशत वोट मिल रहे हैं। कोई यह पूछेगा नहीं कि उसके विपरीत कौन खड़ा था। उसके विपरीत कोई खड़ा ही नहीं है। इस बात का अर्थ क्या है? इस बात का अर्थ यह है कि विचारों की कोई स्वतंत्रता नहीं है।
पिछले पचास वर्षों में रूस में अदभुत घटनाएं घटी हैं। वैज्ञानिकों को
भी सरकार आज्ञा देती है कि किस भांति सोचो। उनको भी कहती है कि कौन सा सिद्धांत निकालो, उनको भी कहती है कौन सा सिद्धांत मार्क्स के अनुकूल नहीं हैं। तो रूस में पिछले तीस वर्षों में बायोलाजी में इस तरह के सिद्धांत भी चलते रहे जो सारी दुनिया में कहीं मान्य नहीं हैं। सारी दुनिया में प्रयोगकर्त्ता कह रहे थे कि यह गलत है, लेकिन स्टैलिन की आज्ञा के अनुसार वे सही थे। स्टैलिन के मरने पर वे गलत हो गए, उसके पहले वे गलत नहीं हो सके। रूस के वैज्ञानिक भी हां में हां भर रहे थे कि यही ठीक है, क्योंकि वैज्ञानिक को भी पार्टी-निर्देश पर जीना है।
उन्नीस सौ सत्रह के पहले रूस ने दुनिया के श्रेष्ठतम बुद्धिमान लोग पैदा किए। उनके नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। लेकिन उन्नीस सौ सत्रह के बाद उस हैसियत का एक आदमी भी रूस पैदा नहीं कर सका। लियो टाल्सटाय, मैक्सिम गोर्की, तुर्गनेव, गोगोल, दोस्तोवस्की या चैखव आदि की हैसियत का एक आदमी भी रूस पचास वर्षों में पैदा नहीं कर पाया। बात क्या है? रूस ने लेखक पैदा किए, पुरस्कार दिए, विचारक पैदा किए, पुरस्कृत किए, लेकिन एक भी विचारक उस गरिमा का नहीं है जो रूस ने अपनी गरीबी के और अत्यंत परेशानी के दिनों में पैदा किए थे, जो उसने जारों की अत्यंत हीन व्यवस्था में पैदा किए। उतने विचारशील, उतने बुद्धिमान, उतने सृजनात्मक व्यक्तित्व भी रूस पैदा नहीं कर पाया। बात क्या है? वह पैदा होने की जो मूलभूत संभावना है आत्मा के जन्म और विचार की स्वतंत्रता; वही छीन ली गई है। तुर्गनेव कैसे पैदा हो? दोस्तोवस्की कैसे पैदा हो?
लेनिन भी वापस रूस में पैदा नहीं हो सकता। लेनिन को भी पैदा होने के लिए अमरीका या इंग्लैंड खोजना पड़ेगा। लेनिन भी रूस में पैदा नहीं हो सकता। सच तो यह है कि जो जानते हैं, वे कहते हैं कि लेनिन को भी जहर देकर ही मारा गया। जिस आदमी ने क्रांति की थी, जिस आदमी ने रूस को समाजवादी बनाना चाहा था, वह भी मारा ही गया। दूसरा आदमी था ट्राटस्की, जिसने क्रांति में दूसरा बड़ा हिस्सा लिया था, वह भागता फिरा था। उसका कुत्ता छूट गया था। रूस में तो कम्युनिस्टों ने उसके कुत्ते की भी हत्या कर दी और फिर मैक्सिको में जाकर उसकी भी हत्ता कर दी। मनुष्य-जाति के इतिहास में इतने बड़े पैमाने पर हत्या का खेल कहीं भी नहीं हुआ। सरल था, क्योंकि आत्मा है ही नहीं, सिर्फ पदार्थ है। तो गुड्डे गुड्डियों को मारने और काटने में क्या अंतर पड़ता है? और फिर यह भी जरूरी है कि जिनके भीतर आत्मा ही नहीं, उन मनुष्यों की स्वतंत्रता की भी क्या जरूरत है? समाजवाद अगर ठीक से सफल हो, जैसा समाजवाद आज है, तो वह प्रत्येक आदमी को मशीन में बदल लेने को तैयार है। मैंने पीछे एक बात कही है; उसे पुनः इस संदर्भ में दोहराना चाहूंगा कि मनुष्य की गुलामी पूरी तरह से तभी समाप्त होगी, जब मनुष्य के श्रम का स्थान हम पूरी तरह यंत्र से बदल डालेंगे। जिस दिन मनुष्य को श्रम करने की आवश्यकता ही न रह जाएगी और सारे स्वचालित यंत्र उसकी जगह काम करने लगेंगे, उस दिन ही श्रमिक सब तरह की दीनता से मुक्त हो सकेगा। एक मार्ग तो यह है जो कि पूंजीवाद के विकास से संभव हो सकता है। दूसरा मार्ग यह है कि यदि हम शीघ्रता करें और आज ही समाजवाद लाना हो तो हम आदमी को ही मशीन बना सकते हैं जो कि रूस और चीन में किया जा रहा है।
वह दूसरा विकल्प है कि आदमी को मशीन में बदल दो। उसे सोचने की क्या जरूरत है, और जिनकी समझ यह है कि आदमी सिर्फ शरीर ही है उनका कहना भी फिर ठीक है, तर्कयुक्त है। उचित भोजन मिलना चाहिए, अच्छे कपड़े मिलने चाहिए,

सुविधाजनक निवास मिलना चाहिए। लेकिन ठीक आत्मा भी मिलनी चाहिए, यह भी किसी समाजवादी नारे में सुना है? रोटी मिलनी चाहिए, कपड़ा मिलना चाहिए, मकान मिलना चाहिए, आत्मा भी मिलनी चाहिए। यह भी कोई समाजवादी नारा है? नहीं; आदमी को रोटी मिल जाए, कपड़े मिल जायें, मकान मिल जाए--बात समाप्त हो गई। इससे ज्यादा आदमी को जरूरत क्या है? बल्कि जो लोग इस संबंध में सोचते हैं वे तो कहते हैं, सोच-विचार से आदमी को परेशानी होती है। अच्छा है कि सोच-विचार छीन लिया जाए तो आदमी बिल्कुल निश्चिंत पशु की भांति जी सके। खाने-पीने को खूब हो, मकान हो, कपड़े हों, रहें, काम करें, सुख से जीएं। सोचने की क्या जरूरत है? सोचने से चिंता पैदा होती है, सोचने से परेशानी पैदा होती है, सोचने से बगावत पैदा होती है, सोचने से आदमी के भीतर हजार तरह की बातें उठती हैं। सुख में बाधा पड़ती है, सोचना छोड़ दो। समाजवादी कहेगा कि सुख से रहो, सोचने की क्या जरूरत है और इंतजाम करेगा कि सोचने की कोई आवश्यकता न रह जाए। व्यवस्था उसने की भी है। सबसे बड़ी व्यवस्था तो यह कि है कि, प्रत्एक बच्चे के मन में इसके पहले कि बुद्धि पैदा हो, समाजवाद की गलत-सही धारणाओं को ठूंस कर डाल दो, ताकि जब उसमें विचार पैदा हो तब तक उसकी आत्मा जंजीरों में कस गई हो।
रूस में जाकर छोटे से बच्चे से पूछो, ईश्वर है? वह कहेगा नहीं है। मेरे
एक मित्र उन्नीस सौ छत्तीस में रूस गए और उन्होंने एक स्कूल में जाकर पूछा कि ईश्वर है? तो उस स्कूल के बच्चों ने कहा, आप इतनी उमर के होकर भी ऐसा नासमझी का सवाल पूछते हैं। ईश्वर हुआ करता था, अब नहीं है। छोटे बच्चों को सिखाया जा रहा है कि कोई आत्मा नहीं, कोई ईश्वर नहीं, कोई धर्म नहीं, कोई जीवन का बड़ा मूल्य नहीं। जीवन का एक ही मूल्य है कि किसी तरह आदमी को ठीक छप्पर, ठीक मकान, ठीक भोजन, ठीक कपड़ा मिल जाए।
रूस में एक अदभुत तरह की अव्यवस्था पैदा हो गई है। रूस में दो वर्ण हैं। एक सत्ताधिकारियों या व्यवस्थापकों का और एक मैनेज्ड या व्यवस्थापितों का। रूस में वर्ग मिटे नहीं, सिर्फ नकाब बदल गई है। रूस में कुछ लोग हैं जो व्यवस्था कर रहे हैं और कुछ लोग हैं जो व्यवस्थित किए जा रहे हैं और दो वर्ग स्पष्ट बंट गए हैं। और वर्ग ही नहीं हैं। मैं कहता हूं, वह वर्ण है। वर्ग और वर्ण में थोड़ा सा फर्क होता है। वर्ग तरल होता है, एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाना आसान होता है। वर्ण निश्चित होता है, ठोस होता है। लचीला या तरल नहीं होता। जैसे कि शूद्र वर्ण है, वर्ग नहीं। क्योंकि शूद्र कुछ भी कोशिश करे तो ब्राह्मण नहीं हो सकता। कुछ भी उपाय करे तो ब्राह्मण में प्रवेश नहीं कर सकता। ब्राह्मण वर्ण है, वर्ग नहीं। उसका घेरा निश्चित है, बंधा है।
रूस में एक नई वर्ण-व्यवस्था पैदा हो रही है, जैसे हिंदुस्तान में कभी पैदा हुई थी। वह वर्ण-व्यवस्था व्यवस्थापक और व्यवस्थापित की है। उसको तोड़ने का कोई उपाय नहीं है। समस्या बहुत जटिल है और वह जो व्यवस्थापक है, वह क्यों नीचे वालों को प्रवेश करने दे? उसके अपने हित हैं, अपने न्यस्त स्वार्थ हैं।
इस भूल में मत पड़िए कि रूस में स्टैलिन को भी वही अधिकार थे जो रूस के
एक गरीब मजदूर को हैं। इस भूल में भी मत पड़िए कि रूस में समानता है या चीन में समानता है या माओ और माओ के चपरासी में कोई समान अधिकारों की बात है। आज समान हुआ ही नहीं जा सकता है, जब तक संपत्ति अतिरिक्त नहीं हो जाती। जब तक संपत्ति इतनी नहीं हो जाती कि संपति का स्वामित्व खोखला मालूम पड़े, तब तक दुनिया में सिर्फ वर्ग बदलेगे, वर्ग मिटेंगे नहीं। वर्गविहीन समाज कभी पैदा होगा तो वही समाज होगा, जिसमें संपत्ति व्यर्थ हो गई होगी। संपत्ति जब तक सार्थक है, तब तक वर्गविहीन समाज पैदा नहीं हो सकता। जिनके हाथ में संपत्ति आएगी, ताकत आएगी, वे नया वर्ग बना लेंगे।
तब मेरी अपनी दृष्टि यह है कि बजाय वर्ण का वर्ग बेहतर है; क्योंकि वर्ण सुस्थिर हो जाता है, कठोर हो जाता है। गतिमयता खो जाती है। कम से कम वर्ग में गतिमयता रहती है। एक गरीब अमीर हो सकता है, एक अमीर गरीब हो सकता है। गरीब और अमीर वर्ग हैं, वर्ण नहीं। लेकिन रूस में जो व्यवस्था है, वह वर्णों को जन्म दे रही है और स्थापित होती चली जा रही है। स्थापित हितों और व्यवस्थापित लोगों के बीच इतनी बड़ी दरार है कि जिसको पार करना असंभव

होता जा रहा है। लेकिन समाजवाद की बुनियादी धारणा पर भी थोड़ा सोच लेना जरूरी है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप समाजवाद की इस धारणा को नहीं मानते कि सबको समान होने का हक है?

इस पर थोड़ा विचार करना जरूरी है। पहली बात तो यह है कि सारे लोग समान नहीं हैं और सारे लोग समान नहीं हो सकते। समान होने के हक की बात नहीं है। सारे लोग समान हैं नहीं। यह तथ्य है। और सारे लोग समान हो भी नहीं सकते। फिर भी मैं कहता हूं, सारे लोगों को समान अवसर होना चाहिए विकास का। इसका क्या मतलब होगा? इसका मतलब होगा कि प्रत्येक व्यक्ति को असमान होने की समान सुविधा होनी चाहिए। हर आदमी जो होना चाहता है, उसे होने का समान हक होना चाहिए; लेकिन एक हक पूंजी पैदा करने का हक भी है, एक हक ज्ञान अर्जित करने का हक भी है। सारी दुनिया के लोग आइंस्टीन नहीं हो सकते, न सारी दुनिया के लोग बुद्ध या महावीर हो सकते हैं। कोई एक व्यक्ति जन्मजात आइंस्टीन होने की क्षमता लेकर पैदा होता है।
लेकिन धन के संबंध में हमने कभी यह नहीं सोचा कि धन पैदा करने की क्षमता भी उतनी ही जन्मजात है, जितनी कि कविता पैदा करने की, जितनी गणित की, जितनी दर्शन की, जितनी धर्म की। धन पैदा करने की क्षमता जन्मजात है। कोई फोर्ड पैदा नहीं किया जाता, पैदा होता है। कुछ लोग धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं और कुछ लोग धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा नहीं होते। यह तथ्य है। और अगर उन लोगों को जो धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं, धन पैदा करने से रोका जाए, तो दुनिया दीन बनेगी, दरिद्र बनेगी, समृद्ध नहीं बन सकती।
यह ऐसा ही है जैसे कल हम कहने लगें कि सारे लोगों को समान कविता करनी पड़ेगी, कोई जरूरत नहीं कि कालिदास और शेक्सपीयर ऊपर चढ़ कर बैठ जाएं। यह बरदाश्त के बाहर है। हम वर्ग-विहीन कविता का समाज बनाएंगे, हर आदमी को एक-सी कविता करनी पड़ेगी। तुकबंदी हो सकती है, शेक्सपीयर और कालिदास पैदा नहीं होंगे। फिर कविता हम सब कर सकते हैं, शब्द जोड़ सकते हैं, तुकबंदी कर सकते हैं; लेकिन कालिदास और शेक्सपीयर तुकबंद नहीं हैं। बात कुछ और है। रंग तो हम भी फेंक सकते हैं किसी पोस्टर पर, रंग हम भी पोत सकते हैं किसी कैनवस पर, लेकिन पिकासो या वानगाग जन्मजात पैदा होते हैं।
सोशलिज्म मनुष्य-जाति की जन्मजात भिन्नता को स्वीकार नहीं करता, यह बड़ी खतरनाक बात है। एक-एक व्यक्ति अपनी तरह का पैदा होता है, दूसरी तरह का नहीं। सच तो यह है कि हर आदमी अनूठा, अद्वितीय, यूनिक, बेजोड़ है; जिससे किसी दूसरे का कोई मुकाबला नहीं किया जा सकता है। इस दुनिया में सब आदमी एक जैसे पैदा भी नहीं होते। कभी पैदा नहीं हुए, इसीलिए तो प्रत्एक आदमी के पास आत्मा है।
आत्मा का मतलब है भिन्न होने की क्षमता।
श्मशानों में समानता हो सकती है, फिएट कारे एक लाख बिल्कुल एक जैसी हो सकती हैं; लेकिन दो आदमी एक जैसे नहीं हो सकते। फिएट कार के पास आत्मा नहीं है, सिर्फ यंत्र है। यंत्र समान हो सकते हैं और अगर आदमियों को समान करने की जबरदस्ती कोशिश की गई तो आदमी यंत्र के तल पर ही समान हो सकता है। उससे ऊपर के तल पर समान नहीं हो सकता। या तो आदमी को यंत्र बनाओ, वह समान हो जाएगा। आदमी जितना ऊपर चढ़ेगा, असमान हो जाएगा। जितना नीचे उतरेगा, उतना समान हो जाएगा। नींद के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। भूख के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। छाया और धूप के मामले में हम करीब-करीब समान हैं। सबको मकान चाहिए, खाना चाहिए, भोजन चाहिए, स्त्री चाहिए। इन मामलों में हम पशुओं से भी समान हैं।
लेकिन जैसे ही हम ऊपर उठते हैं, एक बुद्ध, एक महावीर, एक कालिदास, एक पिकासो, एक आइंस्टीन, एक बर्ट्रेंड रसल--असमानता शुरू हो जाती है। जितने ऊपर जाती है आत्मा, उतनी असमान होने लगती है। जितने ऊपर जाती है, उतनी सिर्फ अकेली रह जाती है। फिर महावीर या बुद्ध जैसा आदमी अकेला रह जाता है

जो करोड़-करोड़ वर्षों तक दूसरा आदमी उस जैसा नहीं होगा, लेकिन हम सबको भीड़ की ईर्ष्या कह सकती है कि अब हम नहीं होने देंगे।
हम सबको समान रखेंगे--अगर एक भी समानता का यह पागलपन पैदा हो जाए जो कि सारी दुनिया में पैदा हो रहा है, तो हम मनुष्य की ऊंचाइयों को नष्ट कर देंगे और सबको लेवलिंग कर देंगे जमीन पर--सबके पास मकान, सबके पास कपड़े, सबके पास औरतें, सब काम करें--खाना खाएं, सो जाएं, सिनेमा देखें, मनोरंजन करें। इस तल पर जीवन समान हो सकता है, लेकिन समान अवसर प्रत्येक को मिलना चाहिए।
समाजवाद समान अवसर पर पहला हमला बोल देता है। वह संपत्ति पैदा करने वाले को काट देता है, छांट देता है। फिर इसके बाद वह जो विचार में असमान हैं, उनको छांटने की कोशिश में लग जाता है। वह कहता है कि हम समान करके रहेंगे, तो हम असमान विचार भी नहीं पैदा होने देंगे। अब आश्चर्य है कि रूस के पचास साल के इतिहास में कोई बड़ा विवाद नहीं हुआ--पचास साल! जब कि सच बात यह है कि मनुष्य की जिंदगी में एक भी विचार ऐसा नहीं है जिस पर विवाद न हो सके। सब विचार अपनी-अपनी जगह से देखे जाते हैं, और दूसरा आदमी जरूरी नहीं है कि राजी हो। श्रेष्ठतम विचारों का विरोध भी निश्चित है। जितनी बुद्धिमत्ता बढ़ती है, उतना विरोध भी बढ़ता है। लेकिन पचास साल में कोई बड़ा विवाद--रूस के वर्णों को मथ डाले--ऐसा कोई विचार, कोई आंदोलन, कोई विरोध, कोई बगावत, कोई विद्रोह--कोई भी नहीं। क्योंकि वे कहते हैं, हम समाजवादी व्यवस्था बनाने में लगे हैं। अभी हम विरोध नहीं कर सकते, अभी हम विद्रोह नहीं सह सकते। अभी स्वतंत्र चिंतन की सुविधा नहीं है हमारे पास। वी कैन नॉट अफर्ड। अभी हम सब स्वतंत्र चिंतन बंद रखेंगे, फिर जब सब ठीक हो जाएगा, तब हम छोड़ेंगे स्वतंत्र चिंतन को।
लेकिन ध्यान रहे, अगर पचास साल तक लोगों के पैर बांध दिए जाएं और पचास साल बाद उनसे कहा जाए कि ठीक है तुम मुक्त हो, दौड़ो, चढ़ो पहाड़; लेकिन पहाड़ तो बहुत दूर है। घर के सामने वह निकल कर चल पाए, यह भी असंभव है। चिंतन भी रुक जाए तो बंद होना शुरू हो जाता है। चिंतन को सुविधा न हो, बगावत को, तो मरना शुरू हो जाता है।
जिन मित्र ने पूछा है कि आत्मा को पाने का इससे क्या संबंध है, उनसे मैं कहना चाहता हूं कि मनुष्य की आत्मा पर सबसे बड़ा खतरा है और वह यह है कि सारी दुनिया में धीरे-धीरे राजनीतिज्ञ सारे अधिकार राज्य के हाथ में केंद्रित कर लेना चाहता है। मनुष्य की आत्मा ही अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहता है और इसके खिलाफ आवाज, इसके खिलाफ विचार जरूरी है; लेकिन जब समाजवाद स्वतंत्रता पर हमला करता है, तब बड़ी तरकीब से करता है। उसकी तरकीब है कि हम समानता लाना चाहते हैं, इसलिए स्वतंत्रता पर हमला करना जरूरी है; क्योंकि स्वतंत्रता रहेगी तो हम समानता कैसे लाएंगे!
समाजवाद फ्रीडम की बात नहीं, इक्वलिटी की बात करता है। वह कहता है, समानता पहली चीज है। जब तक समानता नहीं है, तब तक स्वतंत्रता नहीं होगी। पहले समानता चाहिए, समानता के लिए स्वतंत्रता की हत्या करनी पड़ेगी। यह चुनाव हमें ठीक से समझ लेना चाहिए कि पहला मूल्य किसका है? समानता का या स्वतंत्रता का? प्रिफरेंस किसको देना है? पूरी मनुष्य-जाति को यह निर्णय जल्दी ही लेना पड़ेगा। क्या हम समानता को ज्यादा मूल्य देते हैं या स्वतंत्रता को? ध्यान रहे, अगर स्वतंत्रता रहे तो समानता की आगे भी संभावना है, लेकिन समानता के लिए अगर स्वतंत्रता खो दी जाए, तो आगे स्वतंत्रता की कोई संभावना नहीं रह जाती, क्योंकि स्वतंत्रता एक बार खोकर वापस लाना बहुत कठिन है और समानता की जो बात है, वह बहुत अवैज्ञानिक है, अमनोवैज्ञानिक है, एंटी-साइकोलॉजिकल है।
आदमी समान नहीं है और इसलिए आदमी पर जबरदस्ती अगर हम समानता का आरोपण करेंगे तो वह आदमी को मारेगी, मिटाएगी, नष्ट करेगी। आदमी को असमान होने की, भिन्न होने की, विभिन्न होने की, विपरीत होने की, विद्रोह करने की, इनकार करने की सारी सुविधा होनी चाहिए, तभी मनुष्य की आत्मा उस स्वतंत्रता से फलती है, फूलती है, विकसित होती है। समाजवाद अभी मनुष्य की आत्मा के विरोध में सबसे बड़ी आवाज है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि समाजवाद गरीबों का कल्याण करना चाहता है। क्या आप गरीबों के कल्याण का विरोध करते हैं?

मैं और गरीबी के कल्याण का विरोधी भला कैसे हो सकता हूं? कोई भी क्यों होगा? लेकिन यह ध्यान रहे कि गरीबों का कल्याण करने की आवाज हजारों सालों से चलती है और न मालूम कितने गरीबों के कल्याण करने वाले पैदा हो गए; लेकिन कल्याण गरीबों का नहीं होता, सिर्फ गरीबों के कल्याण की आवाज पर वह जो कल्याण करने वाले हैं, अपना कल्याण कर लेते हैं। और गरीब अपनी जगह पड़ा रह जाता है। उस गरीब के कल्याण से उसका कोई संबंध नहीं होता। लेकिन गरीब साथ जरूर दे देता है। साथ दे देता है, यह आवाज सुन कर कि हमारे कल्याण के लिए यह सब हो रहा है, कुर्बान भी कर देता है, गोली भी खा लेता है, मर भी जाता है। समाजवाद के लिए जो शहीद होते हैं, वे और हैं समाजवाद की ताकत जिनके हाथ में आती है, वे और हैं। समाजवाद के लिए जो मरेगा, वह गरीब होगा। समाजवाद की जिसके हाथ में ताकत आएगी, वह गरीब नहीं है। वह फिर अमीरों का नया वर्ग होगा। असल में ताकत जिसके हाथ में आ जाएगी, वह तत्काल अमीर हो जाएगा। आदमी आदमी में फर्क क्या है? आज जो गरीब की तरफदारी कर रहा है, जैसे ही
वह कल शक्ति में पहुंचता है, उसके अपने न्यस्त स्वार्थ हो जाते हैं। अब उसे शक्ति में रहना जरूरी हो जाता है, तो वह जिनके ऊपर सीढ़ी बना कर आया था, उन सीढ़ियों को काटना शुरू कर देता है, क्योंकि उन्हीं सीढ़ियों से कल दूसरा भी कोई ऊपर आ सकता है। गरीब का कल्याण कभी भी नहीं हुआ। हां गरीब के कल्याण पर आंदोलन बहुत हुए, क्रांतियां बहुत हुई, हत्याएं बहुत हुई। और गरीब का कल्याण नहीं हुआ। अभी गरीब के कल्याण से थोड़ा चौंकने की जरूरत है।
अब जब भी कोई आदमी कहे कि मैं गरीब का कल्याण चाहता हूं, तब जरा सम्हल जाने की जरूरत है कि कोई खतरनाक आदमी आया है। अब यह फिर गरीब की छाती पर पैर रखेगा और गरीब नासमझ है, नासमझ न होता तो गरीब न होता। नासमझ होने की वजह से गरीब है। इसलिए वह फिर नया मसीहा उसे मिल जाता है। नये पैगंबर मिल जाते हैं। नये नेता मिल जाते हैं। ए फिर उसकी छाती पर चढ़ जाते हैं। हिटलर भी गरीबों का कल्याण करके छाती पर चढ़ता है, मुसोलिनी भी गरीबों का कल्याण करने के लिए छाती पर चढ़ता है--माओ भी, स्टैलिन भी। सारी दुनिया में सब गरीबों का कल्याण करना चाहते हैं और गरीब का कोई कल्याण होता दिखाई नहीं पड़ता। नहीं, गरीब का कल्याण इन कल्याण करने वालों से नहीं होगा।
गरीब का कल्याण न होने का कारण क्या है? कारण सिर्फ एक है कि संपत्ति
कम है और लोग ज्यादा हैं। गरीब का कल्याण ऐसे नहीं हो सकता। किसी को भी बिठा दो सत्ता में। उसके बैठ जाने से कुछ भी नहीं होने वाला है। सवाल असली यह है कि संपत्ति कम है और लोग ज्यादा हैं। संपत्ति ज्यादा होनी चाहिए। संपत्ति लोगों से ज्यादा होनी चाहिए। उनकी जरूरत से ज्यादा होनी चाहिए। यह संपत्ति कैसे पैदा हो, यह सवाल है। लेकिन जो संपत्ति पैदा कर सकते हैं, गरीब उनके खिलाफ खड़ा हो जाता है। जो गरीब के लिए हितकर हो सकते हैं; गरीब उनके खिलाफ खड़ा हो जाता है। आदमी की यह आदत बहुत पुरानी है।
यह बहुत आश्चर्य है। गैलीलियो को फांसी पर लटका दिया और आज गैलीलियो
की खोज से सारी दुनिया लाभान्वित हो रही है। जीसस को हमने सूली पर लटका दिया, लेकिन जीसस की खोज सारी दुनिया को मनुष्य बनाने का कारण बन रही है। सुकरात को हमने जहर पिला दिया, लेकिन सुकरात ने जो कहा, वह अनंतकाल तक मनुष्य की आत्मा के विकास के लिए अनिवार्य रास्ता है।
आदमी बहुत अजीब है। वह अपने कल्याण करने वालों को कभी नहीं पहचान पाता है कि कौन उसका कल्याण कर रहा है। असल में जो जितना शोरगुल मचाता है कल्याण करने का, वह उतना ही आगे दिखाई देने लगता है और जो कल्याण कर रहे हैं वे चुपचाप काम में लगे रहते हैं। उनका शोरगुल कुछ पता भी नहीं चलता कि कौन कल्याण कर रहा है। और हम तो प्रचार से प्रभावित होते हैं।
मैं आप से कहना चाहता हूं कि जिन लोगों ने कल्याण किया, वे लोग कुछ और हैं। कोई वैज्ञानिक जो अपनी लेबोरेटरी में बैठ कर खोज कर रहा है, वह कल्याण कर सकता है, लेकिन एक राजनीतिज्ञ नहीं--जो दिल्ली में बैठा है और तिकड़मबाजियां भिड़ा रहा है कि किसकी टांग खींचें, किसकी कुर्सी उलटाएं? इससे हित होने वाला नहीं है। एक लेबोरेटरी में अनजान आदमी जिसका गरीब कभी

नाम भी नहीं जानेगा कि उसका बच्चा... किस पैनेसिलिन की खोज से बच रहा है? कौन उसकी टी.बी. के लिए इंतजाम कर रहा है? कौन उसकी कैंसर के लिए फिकर कर रहा है, कौन उसकी उम्र बढ़ा रहा है? उसका उसे पता भी नहीं चलेगा। कौन उसके घर बिजली को रोशनी जला रहा है? उसे पता भी नहीं चलेगा। लेकिन राजनीतिज्ञ ऐसा है जो कुछ भी नहीं कर रहा है, केवल झंडा पकड़ना जानता है और जोर से चिल्लाना जानता है। असल में कुछ लोगों को जोर से चिल्लाने में बहुत मजा आता है।
मैंने सुना है, एक सड़क के किनारे एक लड़का जोर से चिल्ला रहा है। अखबार बेच रहा है। एक आदमी ने उससे पूछा कि क्या बचा लेते हो? एक-एक आने में अखबार बेच रहे हो, तुम्हें क्या बच जाता है? उसने कहा, बचता कुछ भी नहीं। एक-एक आने में वह जो सड़क पर दूसरी तरफ लड़का अखबार बेच रहा है, उससे खरीदता हूं और एक-एक आने में बेच देता हूं। उस आदमी ने कहा, तुम बड़े पागल हो। लड़के ने का, पागल नहीं हूं। फिर उसने पूछा, तुम्हें मिलता क्या है? लड़के ने कहा, मुझे जोर से चिल्लाने का मजा मिलता है। उस आदमी ने कहा कि तुम बड़े होकर राजनीतिज्ञ हो सकते हो।
मनुष्य का कल्याण करने वाले कौन लोग हैं? वे चुपचाप अपने काम में संलग्न हैं। उनकी खोजें जिंदगी के अंधेरे कोनों में काम कर रही हैं। वे मर जाएंगे, आपके लिए। आपको पता भी नहीं चलेगा कि कौन वैज्ञानिक आपके लिए जहर चख कर मर गया, इसलिए कि वह जहर किसी की जिंदगी न ले ले। आपको पता न चलेगा कि कौन वैज्ञानिक बीमारियों के कीटाणु की परीक्षा करते-करते बीमार होकर मर गया कि वह कीटाणु किसी दूसरे को बीमार न कर सकें। आपको पता न चलेगा कि कौन वैज्ञानिक आटोमेटिक यंत्र खोज रहा है, जिससे किसी आदमी को श्रम करने की जरूरत न रह जाए। लेकिन राजनीतिज्ञ चिल्लाता रहेगा कि हम कल्याण करने वाले हैं, हम कल्याण कर रहे हैं। राजनीतिज्ञ से कल्याण नहीं होता, क्रांतियों से कल्याण नहीं हुआ। बड़े मजे की बात है कि क्रांतियों से कोई कल्याण नहीं हुआ, बलकि क्रांतियों ने कई अर्थों में हजार तरह की हानियां पहुंचाई हैं। मनुष्य के विकास में व्यवधान पैदा किए, बाधाएं खड़ी कीं। जो सहज गति से जीवन की धारा जाती थी, उसे बहुत जगह से तोड़ा और रोका।
अब ऐसी क्रांति की जरूरत है जो बाकी की क्रांतियों को भुला दे। अब एक ऐसी क्रांति की जरूरत है, जो कल्याण करनेवालों से कहे कि आप क्षमा करें। बहुत कल्याण हो चुका। पांच हजार साल से जो हमारा कल्याण करते हैं, अभी तक नहीं कर पाए, अब आप चुप हो जाएं। अब आपकी कोई जरूरत नहीं है।
गरीब के कल्याण का मतलब है, संपत्ति का उत्पादन और गरीब के कल्याण का मतलब है, ऐसे यंत्रों का उत्पादन जो संपत्ति को हजार गुना रूप से पैदा करने लगे। गरीब के कल्याण का मतलब है, पृथ्वी को वर्ग-विद्वेष से विहीन करने का उपाय, वर्ग-विद्वेष नहीं। लेकिन सारे समाजवादी वर्ग-विद्वेष पर जीते हैं। उनका सारा जीना क्लास-कांफ्लिक्ट पर है। गरीब को अमीर के खिलाफ भड़काओ, कारखाना कम चले, कारखाने बंद हों, हड़ताल हो, बाजार बंद हों, मोर्चे हों--इनमें लगे रहें। गरीब को पता नहीं कि जितने मोर्चे होते हैं, जितनी हड़तालें होती हैं, जितना कारखाना बंद होता है--गरीब अपने हाथों से गरीब होने का उपाय कर रहा है; क्योंकि ऐसे देश की संपत्ति कम होगी।
कौन कर रहा है कल्याण? अगर कल्याण करना है तो जोर से लग जाओ संपत्ति पैदा करने में। जोर से कर्म में लगो, जोर से उत्पादन करो। वर्ग-विद्वेष की आग लगाकर उत्पादन की व्यवस्था को मत रोको; बल्कि वर्गों को निकट लाओ। लेकिन नेता वर्गों को निकट लाए तो नेता को कौन पूछे? नेता तभी पूछा जाता है जब वह किसी को लड़ाता है। बिना लड़ाए नेता का कोई अस्तित्व नहीं। इसलिए दुनिया में जब तक नेता रहेंगे, तब तक लड़ाई रहेगी। नेता को विदा करिए, लड़ाई विदा हो जाएगी। नेता लड़ाई निर्माण करता है। वे नेता का भोजन है--उसका आधार, उसका प्राण, उसकी आत्मा, उसका परमात्मा है।
हिटलर ने लिखा है अपनी आत्म-कथा में कि अगर बड़ा नेता होना हो तो बड़ी लड़ाई की जरूरत है और अगर असली लड़ाई न चल रही हो तो कोल्ड-वॉर--ठंडी लड़ाई चलाते रहो; लेकिन लड़ाई जारी रखो और लोगों को भयभीत रखो। क्योंकि भयभीत हालत में लोग नेता को पकड़ते हैं। जब लोग निश्चिंत हो जाते हैं, तब कहते हैं--हम निश्चिंत हैं, नेता की क्या जरूरत? नहीं, लड़ाई जारी रखो तो वे

कहेंगे, कोई अगुवा चाहिए, कोई नेता चाहिए। लड़ाई जारी रखो तो वे कहेंगे, कोई आगे चाहिए--बुद्धिमान, समझदार, जो लड़ सके। हम गरीब हैं, हम कैसे लड़ सकेंगे? इधर हिंदुस्तान में आजादी के बाद के बीस-बाईस वर्षों में वर्ग-विद्वेष की आग पैदा करके हिंदुस्तान के औद्योगीकरण में इस भांति पीठ में छुरा भोंका गया है; लेकिन यह गरीब को कभी पता न चलेगा कि उसने अपनी ही पीठ में छुरा भोंका है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप यह जो बातें कर रहे हैं, ये पूंजीपतियों के बड़े पक्ष में हैं। आप उनके खिलाफ कुछ न कहेंगे?

जरूर उनके खिलाफ बहुत कुछ कहूंगा। कहना ही पड़ेगा। क्योंकि पूंजीपति
भी वर्ग-विद्वेष को पैदा करने में आधारभूत बनता है। असल में जो आदमी धन कमा लेता है, वह तत्काल अपने को अलग दुनिया का हिस्सा समझने लगता है जो कि गलत बात है। धन कमाने से कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता है। धन कमाने से कोई आदमी किसी ऊंचे पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। अगर एक आदमी चित्र बना लेता है तो वह पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। एक आदमी मूर्ति बना लेता है तो पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता है। लेकिन आदमी धन कमा लेता है तो अहंकार के पहाड़ पर चढ़ जाता है। जब तक अमीर धनपति धन के माध्यम से अपने अहंकार की तृप्ति करेगा, तब तक अनिवार्य रूप से वह गरीब को ईर्ष्या से जन्म देगा।
मैंने कल कहा कि गरीब की ईर्ष्या को भड़काया जा रहा है। लेकिन गरीब में इतनी ईर्ष्या क्यों है? गरीब में इतनी ईर्ष्या का पचास प्रतिशत कारण गरीबी है। पचास प्रतिशत कारण पड़ोस में खड़े अमीर का अहंकार है। अमीर को अहंकार छोड़ना पड़ेगा। धन कमाना उसका आनंद है; लेकिन धन कमा कर वह किसी अहंकार को अर्जित करके किसी पहाड़ पर खड़ा हो जाए तो फिर आस-पास के लोग भी उसे पहाड़ से नीचे उतारने की कोशिश करेंगे। असल में धन कमा लेना अहंकार की तृप्ति का मार्ग या माध्यम नहीं बनना चाहिए। बल्कि सच तो यह है कि जितना धन हो, उतना आदमी को निर-अहंकारी हो जाना चाहिए--कि उसने धन की बहुलता को देख लिया और यह भी पा लिया कि बहुत धन मिलने से भी क्या मिल जाता है!
आखिर महावीर और बुद्ध अमीरों के बेटे थे; लेकिन लात मारकर वह अमीरी के बाहर चले गए। क्या कारण था? बुद्ध जब दूसरे गांव में ठहरे तो उस गांव का सम्राट आया और उसने कहाः मैं तुम्हें समझाने आया हूं। तुम पागल हो गए हो। तुम यह धन, यह इज्जत और यह प्रतिष्ठा और यह राजमहल छोड़ कर क्यों भागे? मैं तुमसे अपनी लड़की का विवाह कर देता हूं। लौट आओ! मेरे राज्य को सम्हालो! बुद्ध ने कहाः जो राज्य मैं छोड़ कर आया वह बड़ा था। अब मुझे प्रलोधन मत दो। सम्राट ने कहाः लेकिन छोड़ कर क्यों आए? बुद्ध ने कहा कि मैंने देखा, सब था, लेकिन फिर भी भीतर कोई कमी थी जो धन से पूरी नहीं हुई।
मेरी अपनी समझ है कि निर्धन का अहंकार छूटना बहुत मुश्किल है, क्योंकि उसे पता नहीं कि धन के मिलने पर कुछ नहीं मिलता। लेकिन धनी का अहंकार छूट जाना चाहिए। ठीक अर्थों में वही आदमी धनी है जिसे यह भी दिखाई पड़ गया है कि धन मिल गया, मकान मिल गया। बड़ी फैक्टरी है, बड़ी कार है--सब है, लेकिन भीतर फिर भी कोई जगह खाली रह गई है। उस खाली जगह को जो धन से भर लें तो अहंकार पैदा होता है। उस खाली जगह को जो धन की पृष्ठभूमि में से देख लें तो निर-अहंकार पैदा होता है। धनी को अहंकार छोड़ना पड़े तो गरीब को ईर्ष्या छोड़ने में बड़ी सुविधा हो जाए, लेकिन धनी अपने अहंकार में अकड़े तो गरीब के पास सिवाय ईर्ष्या के क्या बचता है? और तब नेता को सुविधा मिल जाती है कि गरीब की ईर्ष्या को भड़काए और गरीब की ईर्ष्या को भड़काता है तो धनी और अकड़ता है। वह अपने बचाव में लगता है, वह अपने अहंकार की और सुरक्षाएं चाहता है। यह सब खतरनाक उपाय हैं। इससे ईर्ष्या और भड़केगी। आग और फैलेगी। नहीं, अगर इस देश को समृद्ध बनाना हो तो वर्ग-विद्वेष को कम करना पड़ेगा। धनी का पहला काम यह है--गरीब से भी पहले; क्योंकि गरीब की ईर्ष्या बड़ी स्वाभाविक है; लेकिन धनी का अहंकार बिल्कुल अस्वाभाविक है। धनी का अहंकार बहुत थोथा है और गरीब की ईर्ष्या बड़ी वास्तविक है।
एक छोटी सी कहानी मुझे याद आती है। मैंने सुना है, एक अस्पताल है। उसमें जेलखाने के कैदियों को रखा जाता है। लेकिन अस्पताल में भी, जेलखाने

के कैदियों की खाटों में नंबर हैं। एक नंबर की खाट पर जो कैदी जरा मजबूत है और अधिकारी जिसे मानते हैं, उसे रखा जाता है। नंबर एक की खाट है, फिर नंबर दो, सौ नंबर की खाट वाला आदमी को ना-कुछ समझता है, नो-बडी। जो कैदी, नंबर एक की खाट पर रहता है, जंजीर से बंधा है, जकड़ कर बंधा है, लेकिन अकड़ कर जीता है कि मैं कुछ हूं। नंबर एक की जो खाट है उस अस्पताल में, दरवाजे के पास है और वह नंबर एक का जो कैदी है सुबह उठ कर कहता है, अहा, कितना खूबसूरत सूरज निकला है और निन्यानबे खाटों पर बंधे हुए मरीज वहीं अकड़ कर रह जाते हैं कि सूरज हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। धन्य है एक नंबर की खाट वाला आदमी। वह नंबर एक की खाट वाला आदमी गौर से देखता है। कभी कहता है, रात कैसा चांद निकला है, गुलमोहर के फूल खिले हैं। कभी कहता है--सुगंध आ रही है रातरानी की, कभी कहता है, आकाश में बगुलों की कतार उड़ गई। वह हमेशा बात करता रहता है, दरवाजे के पास। सारे मरीज उससे कहते हैं कि धन्यभागी हो तुम और मन में रोज भगवान से प्रार्थना करते हैं कि कितने लोग मर रहे हैं। नंबर एक की खाट का आदमी कब मरेगा? वैसे उससे कहते हैं, तुम धन्यभागी हो। पिछले जन्म में अच्छे कर्म किए होंगे, इसलिए नंबर एक की खाट मिली। हम अभागे हैं, हम को निन्यानबे नंबर की खाट है। किसी को पचास नंबर की। लेकिन मन में कहता है, कब मरोगे! कई दफा उसे हृदय का दौरा आता है।
नंबर एक की खाट के लोगों को अक्सर हृदय का दौरा आता है। उसे कई दफे हृदय का दौरा आता है, तो उन सबके प्राणों में खुशी दौड़ जाती है कि अब मरा, अब मरा। लेकिन नंबर एक की खाट के मरीज बड़ी मुश्किल से मरते हैं। वह फिर ठीक हो जाता है और फिर कहने लगता है कि आज तो तोते इकट्ठे हो गए हैं, गुलमोहर के वृक्ष पर। उनके गीत सुनते हो? लेकिन किसी को कुछ सुनाई नहीं पड़ता। लोग कानों को समेट कर दुख में भरे रह जाते हैं। लेकिन नंबर एक का मरीज भी कब तक बचेगा? वह भी मरा। जब वह मरा तो निन्यानबे मरीजों में दौड़ मच गई। जैसे दिल्ली में मचती है, किसी नंबर एक के आदमी के मरने पर। खूब दौड़े वे, अफसरों की खुशामद की, पैर पकड़े। डाक्टरों के पैर पड़े। जो उनके पास रिश्वत थी, देने लगे। फिर एक आदमी रिश्वत में जीत गया और नम्बर एक की खाट पर पहुंच गया। जाकर उसने पहला काम किया, जो कोई भी करेगा। जब कोई राष्ट्रपति के पद पर पहुंचेगा, तब करेगा। जब नंबर एक की जगह पर पहुंचेगा, तब करेगा। उसने जाकर दरवाजे के बाहर देखा, देखते ही मुश्किल में पड़ गया। न वहां कोई गुलमोहर का पौधा था, न वहां कोई रातरानी थी, न वहां से सूरज दिखाई पड़ता था। न वहां से आकाश दिखाई पड़ता था। बाहर भी परकोटे की बड़ी मजबूत पत्थर की दीवाल थी। उसके अतिरिक्त वहां से कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था! लेकिन उसने कहाः आप जानते हैं, उसने क्या कहा? लौट कर उसने यह कहा कि धन्य हैं मेरे भाग्य, सूरज निकला है, पक्षी गीत गा रहे हैं! फूल खिले हैं! बाकी निन्यानबे मरीज फिर उसकी मृत्यु की प्रार्थना करने लगे। आखिर तुम भी मरोगे ही। कब मरोगे? मैंने सुना है, उस अस्पताल में ऐसा सैकड़ों वर्ष से चला आ रहा है। लेकिन वह नंबर एक का आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता कि कह दे कि बाहर कोई फूल नहीं है, कोई सूरज नहीं है। वह जो धन की नंबर एक की व्यवस्था में पहुंच जाती है, उसको हिम्मत जुटा कर कहना चाहिए कि धन मिल गया, आत्मा नहीं मिल गई। धन मिला गया, कोई सत्य नहीं मिल गया। धन मिल गया, प्रेम नहीं मिल गया, और तब उस धनिक को अत्यंत निर्धन भीतर अनुभव करना चाहिए। अगर यह अनुभव हो तो वह अहंकार का केंद्र न बने। अगर वह अहंकार का केंद्र न बने तो नीचे चारों तरफ ईर्ष्या की आग न पैदा करे। अमीर को अहंकार छोड़ना पड़े अगर वर्ग-विद्वेष मिटाना हो और अमीर को सिंहासनों से नीचे आना पड़े यदि ईर्ष्या की व्यर्थ आग बुझानी है तो।
मनुष्यता धन के कारण ऊंची नहीं हो जाती। अगर दफ्तर में कोई चपरासी है
तो इसी वजह से वह छोटा आदमी नहीं हो जाता। आदमियत अलग बात है और जिस आदमी को आदमियत का ध्यान नहीं, वह आदमी समाज को बहुत तरह का नुकसान पहुंचाता है। धनी को ध्यान रखना पड़ेगा कि धन आदमियत नहीं है और एक मजदूर के भीतर भी परमात्मा है और जब मजदूर की तरफ देखता है तो इस भांति नहीं देखना है जैसे कि पशु की तरफ देखता हो। तो हम वर्ग-विद्वेष की आग को बुझा सकेंगे। बुझ सकती है आग, और अगर आग बुझे तो देश सृजन में लग सकता है। संपत्ति पैदा हो सकती है।

एक मित्र ने पूछा है कि हिंदुस्तान क्यों संपत्ति पैदा नहीं कर पाया?

नहीं कर पाने के कुछ कारण हैं। एक-दो पर मैं बात करूं। पहला तो कारण यह
है कि हमने न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में संपत्ति के विरोध में निर्णय ले लिया है। हमने गरीबी की पूजा की है हजारों साल से। हम गरीब को आदर देते हैं। शायद इसका कारण यह है कि हम बहुत गरीब थे और अमीर की ईर्ष्या के कारण यह हम गरीब को आदर देने लगे। अगर हम भिखमंगे हैं और हमें सम्राट होने का कोई उपाय न हो तो आखिर में हमारा मन यहीं इंतजाम करेगा कि हम सम्राट होना ही कब चाहते हैं। हम तो भिखारी होने में ही आनंदित हैं। यह हमारे अहंकार की आखिरी तरकीब होगी। हजारों साल से भारत गरीब है। उसकी गरीबी इतनी लंबी हो गई है कि उसकी गरीबी में भी अहंकार को तृप्त करने का उपाय खोजना जरूरी था। इसलिए हमने उपाय खोज लिया। हम गरीबी को "सादगी" कहने लगे। हम गरीबी को "अपरिग्रह" कहने लगे। हम गरीब आदमी को आदर देने लगे, और अगर कोई गरीब गरीबी स्वीकार कर ले स्वेच्छा से तो हम उसके चरण छूने लगे, पैर पकड़ने लगे।
जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं। गरीब का कोई बेटा तीर्थंकर की तरह क्यों स्वीकृत नहीं हो सका? न होने का कारण था; क्योंकि गरीब के पास त्याग करने को कुछ भी नहीं है और हम त्याग तौल सकते हैं कि कौन आदमी कितना बड़ा है। हम धन से ही मानते हैं, धन हो तो धन से तौलते हैं और कोई धन छोड़े तो धन से तौलते हैं। महावीर बड़े आदमी हैं; क्योंकि उन्होंने बहुत धन छोड़ा। बुद्ध बड़े आदमी हैं; क्योंकि उन्होंने बहुत धन छोड़ा। बुद्ध अगर गरीब के घर में पैदा हों तो कौन फिकर करता है; क्योंकि छोड़ा क्या? हम पूछते, कितनी मुहरें छोड़ीं, कितने घोड़े, कितने हाथी? वह कहते, कुछ था नहीं हमारे पास। तो हम कहते, भाग जाओ। तुम तीर्थंकर नहीं हो सकते। तीर्थंकर होने के लिए हजारों-करोड़ों रुपये चाहिए। हम रुपए से ही तौलते हैं, गरीब आदमी रुपये से ही तौलता है। धन को भी रूपए से तौलता है। त्याग को भी रुपये से तौलता है।
मैं जयपुर में मेहमान था। एक आदमी ने मुझसे कहा, एक भरी संन्यासी हैं, उनसे आप मिलें। बहुत अदभुत आदमी हैं। मैंने कहाः तुमने किस तराजू से पता लगाया है कि बहुत बड़े संन्यासी हैं? उन्होंने कहाः खुद जयपुर महाराज उनके पैर छूते हैं। तो मैंने कहाः तुम्हारे मन में जयपुर महाराज का आदर है, संन्यासी का तो कोई आदर नहीं है। अगर जयपुर महाराज पैर न छुएं तो संन्यासी गया।
मैं एक संन्यासी के पास कभी रुका था। वह दो-चार बातचीत के बाद जरूर यह चर्चा चलाते कि मैंने लाखों रुपये पर लात मार दी। मैंने उनसे एक दिन पूछा कि लात आपने कब मारी? उन्होंने कहाः कोई तीस साल हो गए। मैंने कहाः लात ठीक से लग नहीं पाई। तीस साल के बाद भी आपको याद है, कि आपने लाखों रुपये पर लात मार दी। तो अभी भी मजा वही है। लाखों थे तो भी अकड़ लाखों की थी। अब भी जो अकड़ है, वह लाखों के छोड़ने की अकड़ है, लेकिन है पैसा ही आधार। गरीब आदमी पैसे को आधार बना लेता है; लेकिन दुर्भाग्य के क्षण में हमारी गरीबी को अंगीकार कर लिया और हमने कहा कि गरीबी भी सौभाग्य है। संतोष करो इसलिए संपत्ति पैदा न हो सकी। संपत्ति पैदा करने के लिए गरीबी का आदर छोड़ना पड़ेगा। दरिद्र को नारायण नहीं कहना है। बहुत हो चुकी यह नासमझी। दरिद्र नारायण नहीं है। दरिद्रता महारोग है। प्लेग, हैजा को जैसे मिटाना है, वैसे ही दरिद्रता को भी मिटा देना है। दरिद्रता नहीं बचने देनी है। संपत्ति की स्वीकृति हमारे मन में आए तो हम संपत्ति पैदा कर लेंगे। हम वही पैदा करते हैं, जो हम पैदा करने की आकांक्षा जगा लेते हैं। हमने गरीबी पैदा कर ली, क्योंकि हमने गरीबी को स्वीकार कर लिया है।
गांधी जी से कोई पूछता था कि आप थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं, तो वह कहते थे चूंकि फोर्थ क्लास नहीं है। अब गांधी जी का मन तृप्त न होगा, जब तक नरक की रेलगाड़ी में न चलें। क्योंकि फोर्थ क्लास में क्यों चलते हैं? वे कहेंगे, फिफ्थ क्लास नहीं है इसलिए। हम कहेंगे गांधी महात्मा है; क्योंकि वे थर्ड क्लास स्वीकार कर रहे हैं। हम सब थर्ड में चलते हैं तो हमें लगेगा

कि यह है महात्मा असली। क्योंकि थर्ड क्लास में हमारे प्राण ही परेशान हो रहे हैं। हम भी चाहते हैं कि फर्स्ट क्लास में चलें, लेकिन फर्स्ट क्लास में चलना नहीं हो पाता है। तो अब थर्ड क्लास में जो चलेगा, उसको हम कहेंगे। यह है महात्मा। अब हम किसको आदर देंगे? हम अब थर्ड क्लास को आदर का आधार बनाने की कोशिश करेंगे कि थर्ड क्लास में चलना भी बड़े महत्व की बात है। इससे हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है।
इस अहंकार की भूखी तृप्ति ने इस देश में संपत्ति को पैदा करने में बाधा डाल दी। इसको हटा देना पड़ेगा। संपत्ति की अपनी जरूरत है। संपत्ति सब कुछ नहीं है, लेकिन बहुत-कुछ है। संपत्ति से आत्मा नहीं मिल जाएगी, लेकिन संपत्ति के बिना आत्मा को पान भी बहुत मुश्किल है। संपत्ति से कम से कम जो सबसे बड़ी कीमती बात मिलती है, वह यह है कि शरीर को भूलने की सुविधा मिलती है। रोटी का उपयोग एक ही है कि शरीर भूल जाता है। भूख में शरीर भूलना मुश्किल है। सिर में दर्द हो तो सिर नहीं भूल सकता। दर्द न हो तो सिर भूल जाता है। पैर मैं कांटा गड़ा हो तो आत पैर में ही चली जाती है, वहां कांटे के पास निवास करने गलती है। कांटा निकल जाए, आत्मा पैर से विदा हो जाती है। जहां अभाव है, वहां खटकता रहता है। गरीब शरीर में ही जी पाता है। क्योंकि शरीर ही खटकता रहता है।
अमीर के लिए एक सुविधा है कि वह शरीर को भूल सकता है और मैं मानता हूं इसलिए सारी दुनिया को अमीर किया जाना जरूरी है, ताकि एक-एक आदमी शरीर को भूल सके। जिस दिन हम शरीर को भूल पाते हैं, उसी दिन आत्मा की सुधि आनी शुरू होती है। उस दिन खयाल आना शुरू होता है कि फिर मैं क्या हूं? जब शरीर की कोई जरूरत नहीं बचती है तो सवाल उठता है, अब मेरी क्या जरूरत है? अब मैं क्या खोजूं? धर्म की और आत्मा की खोज मनुष्य की सभी सुविधाओं की तृप्ति के बाद पैदा हुई खोज है। वह लास्ट लक्जरी है। वह आखिरी विलास है। वह सुविधाओं के बाद की अंतिम चरम यात्रा है। लेकिन हमने जो निर्णय लिया था, वह भ्रांत था। वह निर्णय यदि हम बदल दें तो आज सारी स्थिति बदल सकती है।
और एक बात। हमने एक और निर्णय भी लिया था, इस गरीबी के साथ राजी होने
के लिए। वह निर्णय यह था कि आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण। वह भी संतोष की व्यवस्था थी। हम कहते थे, अमीर अपने पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण अमीर है। गरीब अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण गरीब है। इससे तृप्ति मिलती थी, संतोष मिलता था। और हम गरीबी में ही जी लेते थे। इसलिए गरीबी का मिटना मुश्किल हो गया। गरीबी हमारे पिछले जन्मों के कर्मों का परिणाम नहीं है। गरीबी हमारी इसी जन्म की भूलों का फल है। इस जन्म में हम जो कर रहे हैं, वह अगर संपत्ति पैदा नहीं कर रहा है, तो गरीबी अनिवार्य हो जाएगी। दूसरी बात, गरीबी एक-एक व्यक्ति की व्यक्तिगत व्यवस्था का भी फल नहीं, हमारी सामूहिक अंतर-व्यवस्था का भी फल है। ये दो बातें अगर खयाल में आ जाएं तो गरीबी मिटाई जा सकती है। जब तक हम सोचते थे, आदमी की उम्र भाग्य से तय है, तब तक आदमी की उम्र नहीं बढ़ाई जा सकी। लेकिन अब उम्र बढ़ी है, क्योंकि भाग्य का विश्वास घटा है।
तिब्बत में एक रिवाज था। बच्चे जब पैदा होते तो पहले उन्हें बर्फीले पानी में डुबा देते। फिर निकाल लेते। सात दफा डुबकी देते। दस में से सात बच्चे मर जाते, तीन बच्चे बचते; लेकिन उनका मानना यह था कि जो मर गया, वह मर ही जाता है, इसलिए मर गया। जो बच गया है, वह बच ही जाता है। और हमने परीक्षा कर ली कि कौन बचने को आया, कौन मरने को आया। तो चलता रहा तिब्बत में यह रिवाज। करोड़ों-करोड़ बच्चे मरते रहे। जरूरी नहीं था कि जो बच्चा जिंदा पानी में पैदा होते ही डुबा दिया जाए, वह मर ही जाता। हां, रेसिस्टेंस उसका थोड़ा कम जरूर था। लेकिन रेसिस्टेंस थोड़ा बढ़ाया जा सकता था, इलाज किया जा सकता था। लेकिन मारने का इंतजाम कर लिया। उम्र तब बढ़नी शुरू हुई, जब हमें खयाल आया कि उम्र कोई भाग्य का निर्णय नहीं है। तो उम्र बढ़ गई। पहले हम सोचते थे कि बीमारी भी पिछले जन्मों के कर्मों का फल है तो हम बीमार से नहीं लड़े। जिस दिन खयाल आ गया कि बीमारी पिछले जन्मों के कर्मों का फल नहीं है, बीमारी को बदल दिया गया। आज बहुत सी बीमारियां विदा हो गईं। एक वक्त आएगा कि जमीन पर बीमारी बहुत असंभव बात हो जाएगी।

गरीबी को हमने स्वीकार किया, इसलिए गरीब हैं। हमें पूरे मन से गरीबी
को अस्वीकार करना पड़ेगा तो ही गरीबी मिट सकती है और अगर सारा मुल्क तय कर ले तो कोई भी कठिनाई नहीं है गरीबी को मिटा देने में। क्योंकि गरीबी को मिटाने का मतलब है पहले तो गरीबी को मिटाने का संकल्प लें। लेकिन अब गरीब को नई नासमझियां समझाई जा रही हैं। उसे समझाया जा रहा है कि तेरा शोषण किया जा रहा है, इसलिए तू गरीब है। तो तू शोषक को मिटा। शोषक मिट जाएगा, तो तू अमीर हो जाएगा। यह बड़ी नासमझी की और आत्मघाती दलील है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप कहते हैं कि गरीब का शोषण नहीं हो रहा है? आप गलत कहते हैं। गरीब से दस रुपये का काम लिया जाता है और उसे दो रुपये दिए जाते हैं।

मैं उनसे पूछता हूं, वह काम न करे दस रुपये का। वह दो रुपये का काम न करे। वह अपनी मजदूरी को, अपने इस श्रम को जहां दस रुपये में बिकता हो, बेच दे। वह कहां बेचेगा दस रुपये में? वह जो दो रुपये में बेच रहा है, अगर न बेचे तो दो पैसे में भी नहीं बेच पाएगा। दस रुपये का मूल्य कैसे है उसका? मूल्य कैसे तय होता है? मूल्य के तय होने का मतलब क्या है?
मार्क्स ने एक बहुत ही अजीब बात लोगों को समझाई कि गरीब जितने का काम
कर रहा है उससे कम का पैसा उसे दिया जा रहा है। लेकिन गरीब को जो पैसा दिया जा रहा है, अगर वह काम न करे तो उसके श्रम का पैसा उसे मिलने वाला कहां है और उसे ज्यादा कहां मिल जाएगा? जितना मिल रहा है उससे ज्यादा की तलाश की जा सकती है, उससे ज्यादा का उत्पादन किया जा सकता है। लेकिन अगर इस ढंग से सोचा जाए कि यह शोषण किया जा रहा है, तो हम गरीब और अमीर के बीच एक दुश्मनी खड़ी करते हैं और उत्पादन की व्यवस्था अगर दुश्मनों की व्यवस्था हो जाए, तो देश समृद्ध नहीं हो सकता। उत्पादन की व्यवस्था मित्रों की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें गरीब को सोचना चाहिए कि छीनने का नहीं, संपत्ति को और ज्यादा पैदा करने का खयाल है। इसमें अमीर को सोचना चाहिए कि वह जितना मुनाफा इकट्ठा करता है, उतना मुनाफा इकट्ठा करने का सवाल नहीं, उस मुनाफे को भी नियोजित करने का सवाल है और संपत्ति पैदा करने में; तो हम इस देश को कल अमीर बना सकते हैं।
लेकिन आज समाजवादी जो बातें कर रहे हैं, अगर उनकी बात मान ली गई तो आज जितना मुल्क गरीब है, बीस साल बाद और भी ज्यादा गरीब होगा; क्योंकि वे संपत्ति-उत्पादन की तरफ सोच ही नहीं रहे हैं, वे संपत्ति-विभाजन, वितरण, बांट लेने की तरफ सोच रहे हैं और गरीब को बिल्कुल ठीक लगता है कि संपत्ति बंटे और मुफ्त मिल जाए। वह गरीब इसलिए है कि श्रम करने की, सृजन करने की, पैदा करने की जो प्रबल आकांक्षा होनी चाहिए--वह उसमें नहीं है। तो वह कहता है, अगर बंट कर मिल जाए तो बहुत अच्छा है। तो वह कहता है--काम-धाम बंद करो, मोर्चा लगाओ, हड़ताल करो! संपत्ति बंटनी चाहिए, संपत्ति मिल जानी चाहिए। यह जो हम आकांक्षा पैदा कर रहे हैं गरीब में, अगर हिंदुस्तान के गरीब
की आत्मा में यह आकांक्षा प्रवेश कर गई तो हिंदुस्तान सदा के लिए गरीब होने की सील-मुहर अपनी छाती पर लगा लेगा। फिर गरीबी से छुटकारा पाना बहुत असंभव हो जाएगा।

एक मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीपतियों के पक्ष में बोल रहे हैं, तो आपको पूंजीपतियों से पैसे तो नहीं मिल रहे हैं?

बड़ा मजा है, हमारे सोचने का सारा ढंग ऐसा है। अगर मैं समाजवाद के पक्ष में कोई बात करता हूं तो मेरे पास पत्र आते हैं कि आपको चीन से पैसे तो नहीं मिल रहे हैं? आप माओ के एजेंट तो नहीं हैं? अगर मैं समाजवाद की आलोचना करता हूं तो वे कहेंगे, आपको अमरीका से तो पैसे नहीं मिल रहे हैं, आप किसी पूंजीपति के एजेंट तो नहीं हैं? क्या इस दुनिया में सोचना गुनाह है? सिवाय एजेंट के और कोई नहीं सोचता, सिर्फ एजेंट ही सोचते हैं? असल में जिन्होंने यह पूछा है वे जरूर कहीं न कहीं एजेंसी से संबंधित होंगे, क्योंकि हमारी कल्पना में यह बात नहीं आती कि कोई आदमी सीधा भी सोच सकता है। हम पूछेंगे,

जरूर किसी का एजेंट होगा। इसका मतलब हुआ कि आदमी के पास अपनी आत्मा नहीं है, अपने सोचने का ढंग नहीं है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कभी समाजवाद के पक्ष में कहते हैं, कभी पूंजीवाद के पक्ष में कहते हैं। आप ऐसी विपरीत बातें करके हमें परेशानी में डाल देते हैं!

असल में हमारी कठिनाई यह है कि समाजवाद और पूंजीवाद को जो विपरीत समझता है, वह गलत समझता है। पूंजीवाद की विकसित अवस्था समजावाद है। वह विपरीत नहीं है और जब मैं पूंजीवाद के पक्ष में कहता हूं तो मैं उस प्रक्रिया की बात कर रहा हूं जिससे कि अंत में समाजवाद उपलब्ध होगा। उन दोनों में विरोध नहीं है। लेकिन चूंकि हम दुश्मनी की भाषा में सोचने के आदी हो गए हैं, इसलिए हम और तरह से सोच ही नहीं पाते हैं। को-आपरेशन नहीं, कांफ्लिक्ट--सहयोग नहीं, संघर्ष की भाषा में सोचो--यही हमें सिखाया जा रहा है। नेता संघर्ष की भाषा में सोचता है। मैं कोई नेता नहीं हूं। मुझे लगता है कि समाजवाद लक्ष्य है, लेकिन पूंजीवाद प्रक्रिया है और इसलिए मैं समाजवाद के पक्ष में हूं और पूंजीवाद के विपक्ष में नहीं हूं।
इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। न मालूम कितने मित्रों ने यही लिख कर पूछा है कि आप कभी यह कहते हैं, कभी वह कहते हैं। आप कल जवान थे, आज बूढ़े हो गए। पहले बालक थे, फिर जवान हुए, फिर बूढ़े हो गए। आपसे कोई कहे कि बड़े इनकंसिस्टेंस आदमी मालूम पड़ते हैं। कभी बच्चा होते हैं, कभी जवान होते हैं, फिर बूढ़े हो जाते हैं। नहीं, इसको आप इनकंसिस्टेंस नहीं कहेंगे, इसको कहेंगे ग्रोथ। यह विकास है। बचपन से जवानी आती है, जवानी से बुढ़ापा आता है। पूंजीवाद से समाजवाद आएगा, समाजवाद से साम्यवाद आएगा, साम्यवाद से अराजकतावाद आएगा। जिस दिन साम्यवाद ठीक से व्यवस्थित होगा, राज्य की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। लेकिन यह क्रमिक अवस्थाएं हैं समाज की। ये विरोध नहीं हैं, ये विकास हैं।
मैं कोई भी असंगति की बात नहीं कह रहा हूं। मेरी दृष्टि में उसकी संगति है, इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि हिंदुस्तान में समाजवाद की बातें करने वाले लोग समाजवाद नहीं लाएंगे। हो सकता है, वे समाजवाद के आने में बाधा डालें; क्योंकि पूंजी का तंत्र तोड़ दें और हिंदुस्तान में समाजवाद कभी न आ सके; लेकिन कोई सोच भी न पाएगा कि बिड़ला या टाटा समाजवाद ला रहे हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, वे ला रहे हैं। लाने का मतलब यह है कि वे जो संपत्ति पैदा कर रहे हैं, अगर वह बड़े पैमाने पर फैलाई जाए तो संपत्ति के उत्पादन की अंतिम परिणति समाजवाद ही है। समाजवाद आ जाएगा, वह सहज परिणाम होगा पूंजीवाद का, लेकिन मार्क्स ने थीसिस और एंटी-थीसिस की भाषा समझा दी है। वाद और प्रतिवाद के कलह की, सर्वहारा की क्रांति की और बगावत की बात उसे समझा दी है। मार्क्स के पास विकास की कोई धारणा नहीं है, और इसलिए मार्क्स में एक बुनियादी कमजोरी है जब कि जीवन का बुनियादी नियम विकास है। क्रांति तो तब जरूरी होती है जब विकास को कोई रोकने को आमादा हो जाए, लेकिन विकास ही न हुआ हो तो... समझ लें कि मैंने कल कहा कि मां के पेट से पांच महीने का बच्चा निकालना पड़े तो इसको मैं गलत कहूंगा। यह खतरनाक है। बच्चा मरेगा, मां भी मर सकती है और अगर बच्चा किसी तरह बचा तो मरा हुआ बचेगा। लेकिन यह भी हो सकता है कि मां के पेट में नौ महीने के बाद भी बच्चा पैदा न हो और मां का पेट काटना पड़े। क्रांति तब की जाती है जब विकास में कोई अवरोध डाल दे। अवरोध हटाने के लिए क्रांति की जरूरत है। क्रांति समय के पहले जरूरी नहीं है।
अमरीका में अगर पचास साल के बाद समाजवाद न आया तो क्रांति की जरूरत हो सकती है। न तो अभी रूस में जरूरत थी, न अभी चीन में जरूरत थी और न अभी हिंदुस्तान में जरूरत है। लेकिन जहां जरूरत नहीं वहां हो रही है। लेनिन ने भविष्यवाणी की थी कि लंदन तक कम्युनिज्म का जो यात्रा-पथ है--वह मास्को से पेकिंग--पेकिंग से कलकत्ता और कलकत्ता से लंदन की तरफ जाएगा। बड़ी खतरनाक भविष्यवाणी थी, लेकिन पूरी होती मालूम पड़ती है। पेकिंग तक को पक्का सीमेंट रोड बन गया है, कलकत्ते तक भी पगडंडियां आनी शुरू हो गई हैं।

यदि लेनिन की भविष्यवाणी पूरी हो गई तो वह पूरे एशिया के लिए, पूरी दुनिया के लिए दुर्भाग्य की बात होगी। अभी वे पगडंडियां तोड़ी जा सकती हैं। अभी वे पगडंडियां पक्की, मजबूत हिस्सा नहीं बन गई हैं, लेकिन कोई दृष्टि न हो, तो कैसे तोड़ी जाएं?
सबसे बड़े मजे की बात यह है कि कम्युनिज्म के पास आंदोलन है, समाजवाद
के पास विचार है, लेकिन पूंजीवाद के पास कोई विचार नहीं, कोई फिलासफी नहीं, इसलिए वह खड़ा नहीं हो पाता, वह सरकता जाता है। वह डिफेंसिव है और जब तक पूंजीवाद रक्षा का उपाय करेगा, तब तक मरेगा। पूंजीवाद की रक्षा का उपाय करने का मतलब यह है कि हार अब स्वीकृत हो गई। जिस आदमी को, जिसे व्यवस्था को जीतना हो, उसे रक्षा का उपाय नहीं पकड़ना चाहिए, लेकिन पूंजीवादी रक्षा कर रहा है। वह कहता है--कलकत्ता गया तो कोई बात नहीं, अभी बंबई सम्हालो। कल बंबई जाए, तो दिल्ली सम्हालो। कल दिल्ली जाए तो सम्हालते चले जाओ और पीछे हटते चले जाओ।
नहीं, इस तरह नहीं होगा। जब कोई आंदोलन हिंसात्मक ईर्ष्या पर खड़ा होता है, उसके पास बड़ी आग की लपटें होती हैं, वह फैलती चली जाती है। आग की उन लपटों के खिलाफ विचार की प्रबल शक्ति हो सकती है; क्योंकि मेरी समझ यह है कि पूंजीवाद बिना अपनी दलील दिए मरा जा रहा है। वह बिना गवाह उपस्थित किए ही हारता जा रहा है। एक ही विपक्षी उपस्थित होकर सारा निर्णय लिए ले रहा है। पूंजीवाद को अपनी फिलासफी सामने रखनी चाहिए और पूंजीवाद को यह स्पष्ट घोषणा करनी चाहिए कि समाजवाद पूंजीवाद का हिस्सा है, उसके विकास का हिस्सा है। समाजवाद पूंजीवाद का पहला नहीं, उसका अंतिम चरण है और जिस दिन पूंजीवाद इस व्यवस्था, इस विचार को सामने रख पाए, उस दिन हम कलकत्ता से भी पीछे हटा सकते हैं और पेकिंग से भी पीछे हटा सकते हैं, और पेकिंग से भी वापस मास्को और मास्को से भी वापस लौटा सकते हैं। उसमें कोई ज्यादा कठिनाई नहीं है।
बेचैनी है आज रूस में भी। आज रूस में भी बहुत परेशानी है, बहुत तनाव है। रूस का युवा-वर्ग आज उत्तेजित और परेशान है, लेकिन बगावत की वहां सुविधा नहीं है। वह बगावत वहां भी पहुंचनी चाहिए। अमरीका का भी कसूर यही है कि उसके पास भी कोई आक्रामक विचार नहीं है, सिर्फ रक्षात्मक विचार है, इसलिए वह परेशानी में है। लेकिन मुझे लगता है कि समाजवाद पेकिंग और कलकत्ता होता हुआ लंदन नहीं जाएगा। अगर समाजवाद को कहीं से भी फैलना है दुनिया सें, तो वह केंद्र वाशिंगटन होगा। समाजवाद वाया वाशिंगटन; उसके सिवाय कोईर् सम्यक रास्ता नहीं हो सकता है। वाशिंगटन के ही माध्यम से अगर दुनिया में समाजवाद फैलेगा तो सुखद, स्वस्थ और सहज हो सकता है।

समाजवाद से सावधान
तीसरा प्रवचन

पूंजीवाद की नैसर्गिक व्यवस्था

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि पूंजीवाद तो स्वार्थ की व्यवस्था है और फिर भी
आप उसका समर्थन कर रहे हैं?

इस संबंध में थोड़ी सी बात समझ लेना जरूरी है। पहली बात तो यह समझ लेना जरूरी है कि आज तक मनुष्य को जो बहुत सी गलत बातें सिखाई गई हैं, उनमें एक गलत बात यह है कि अपने लिए जीना बुरा है। मनुष्य पैदा ही इसलिए होता है कि अपने लिए जीए! मनुष्य को समझाया जाता रहा है कि दूसरे के लिए जीओ, अपने लिए जीना बुरा है। बाप बेटे के लिए जीए, और बेटा फिर अपने बेटे के लिए जीए; और इस तरह न बाप जी पाए, न बेटा जी पाए! समाज के लिए जीओ, राष्ट्र के लिए जीओ, मनुष्यता के लिए जीओ, भगवान के लिए जीओ, मोक्ष के लिए जीओ। बस, एक भूल भर मत करना--अपने लिए मत जीना। यह बात इतनी बार समझाई गई है कि हमारे प्राणों में गहरी पैठ गई है कि अपने लिए जीना जैसे पाप है, जब कि कोई भी आदमी अगर जीए तो सिर्फ अपने लिए ही जी सकता है और अगर दूसरे के लिए जीना भी निकलता है तो वह अपने लिए जीने की गहराई का परिणाम है, वह उसकी सुगंध है।
कोई आदमी इस जगत में दुसरे के लिए नहीं जी सकता, असंभव है यह। मां भी बेटे के लिए नहीं जीती है और अगर बेटे के लिए मरती है तो वह मां का आनंद है। बेटा सिर्फ बहाना है। अगर नदी में एक आदमी डूब रहा हो और आप किनारे पर खड़े हों और दौड़ कर जब आप उस आदमी को बचाते हैं तो शायद आप लोगों से कहें कि इस आदमी को मरने से बचाने के लिए मैंने अपना जीवन दांव पर लगा दिया। आप बिल्कुल गलत कह रहे हैं। सच्चाई कुछ और है। सच्चाई यह है कि आप उस आदमी को डूबते हुए न देख सके। यह आपकी पीड़ा है, यह आपका कष्ट था। इस कष्ट को मिटाने के लिए आप कूदे हैं और उस आदमी को आपने बचाया है। उस आदमी से आपका कोई संबंध नहीं है और अगर आपको यह पीड़ा नहीं होती, तो आप न बचाते। दूसरे लोग भी थे नदी के किनारे, जिन्हें कोई पीड़ा न हुई थी। वे अपने रास्ते चले गए। जब कोई आदमी किसी को नदी में डूबने से बचाता है, तब भी अपनी ही पीड़ा के निवारण के लिए। वह उस आदमी को डूबते हुए देख कर अपने को नहीं देख सकता, यह उसके लिए असंभव है। बहुत गहरे में अपनी पीड़ा का ही वह निवारण कर रहा है।
अगर एक आदमी जाकर गरीबों की सेवा कर रहा है तो वह गरीबों की सेवा नहीं
कर रहा है। अगर कह रहा है तो गलत कह रहा है। वह आदमी गरीब को गरीब देखना असंभव पा रहा है। उसके भीतर एक पीड़ा जन्म ले रही है, जिसे दूर किए बिना वह नहीं रह सकता। वह अपनी पीड़ा दूर करने को गरीब की सेवा करने गया है। आज तक कोई मनुष्य दूसरे के लिए नहीं जीया है, सब मनुष्य अपने लिए जीते हैं। लेकिन अपने लिए जीना दो तरह का हो सकता है। एक अपने लिए ऐसा जीना जिसमें दूसरे को मारना भी आ जाए, मिटाना भी आ जाए। एक ऐसा जीना जिसमें दूसरे का जीवन भी विकसित होता हो। लेकिन परोपकार की बात बहुत खतरनाक है। जब भी हम किसी आदमी को सिखाते हैं कि दूसरे के लिए जीओ, तभी वह आदमी रुग्ण, बीमार और अस्वस्थ होना शुरू हो जाता है।
मैंने सुना है, एक बाप अपने बेटे को समझा रहा था। वह उसे अच्छी शिक्षाएं दे रहा था और अच्छी शिक्षाएं बड़ी खतरनाक होती हैं बहुत बार। वह अपने बेटे से कह रहा है कि भगवान ने तुझे इसलिए पैदा किया है कि तू दूसरे की सेवा कर। पुराने जमाने का बेटा होता तो मान लेता और सेवा करने निकल जाता। उस नये जमाने के बेटे ने कहाः मैं समझ गया, भगवान ने मुझे दूसरों की सेवा के लिए पैदा किया है। मैं यह पूछना चाहता हूं, भगवान ने दूसरों को किसलिए पैदा किया? इसलिए कि मेरी सेवा लें? तो भगवान ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया या इसलिए कि दूसरे मेरी सेवा करें और मैं उनकी सेवा करूं? तो भगवान बहुत कनफ्यूज्ड मालूम होता है। यह उलटी झंझट क्यों करनी? एक-एक आदमी अपनी कर ले, यह सरल व्यवस्था है। मैं आपकी करूं और आप मेरी करें--ऐसी उलझन में पड़ने का प्रयोजन ही क्या है?

और ध्यान रखें, जब भी कोई आदमी किसी की सेवा करता है तो नीचे पैर भी दबाता है, ऊपर गर्दन भी पकड़ लेता है। सेवा करने वाला हमेशा गर्दन पकड़ लेता है, हालांकि गर्दन पकड़ने की यात्रा पैर दबाने से शुरू करनी पड़ती है। सेवक से सदा सावधान रहना; क्योंकि सेवक कहेगाः मैंने सेवा की है, मैंने कुर्बानी की है तुम्हारे लिए। जो मां अपने बेटे से कहती हैः मैंने कुर्बानी की है तुम्हारे लिए, वह मां अपने बेटे को क्रिपिल्ड करके रहेगी, पंगु कर देगी, जान ले लेगी। जो बाप अपने बेटे से कहेगा तेरे लिए मैंने सब गंवाया है, वह इस बेटे की गर्दन जिंदगी भर दबाएगा। स्वाभाविक है दबाना। स्वाभाविक इसलिए है कि उसने कुर्बानी की है, शहीद हुआ है और शहीदी का बदला किससे ले? उसने कुर्बानी की है, वह बदला किससे ले? वह किससे कहे कि मैंने इतनी कुर्बानी की है। लेकिन किसी मां ने अगर कभी कहा हो कि मैंने कुर्बानी की है बेटे के लिए, तो मां ही नहीं है। उसे मां होने का पता नहीं चला। मां होने का आनंद है वह, बेटे से उसका कोई संबंध नहीं है। और अगर बेटा न होता तो वह मां जिंदगी भर तड़पती कि किसके लिए न्योछावर कर दूं, किसके लिए परेशान हो जाऊं, किसके लिए जागूं, किसकी प्रतीक्षा करूं?
मनुष्य का व्यक्तित्व, मनुष्य का स्वभाव अपने लिए जीने का है; लेकिन
यह सीधी, साफ बात स्वीकृत नहीं है। हम इसे गाली देते हैं। हम कहते हैं, यह स्वार्थ है। स्वार्थ ही स्वाभाविक है। अस्वाभाविक नहीं है स्वार्थ। अस्वाभाविक वहां होता है जहां मेरा स्वार्थ आपके स्वार्थ की हत्या करना शुरू करे। इसलिए समाज की व्यवस्था ऐसी नहीं होनी चाहिए जिसमें हम कहें कि समाज के लिए कुर्बानी करो।
समाज की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि हम प्रत्येक को अपने हित के लिए जीने का मौका दें और समाज तथा कानून एवं राज्य सिर्फ वहीं बाधा बनें, जहां कोई व्यक्ति किसी के स्वार्थ की हत्या करता हो, अन्यथा समाज को बीच में आने की कोई भी जरूरत नहीं। लेकिन तथाकथित समाजवादी, साम्यवादी चिंतन कहता है कि व्यक्ति का बलिदान करेंगे समाज की बलिवेदी पर। समाज है लक्ष्य, व्यक्ति को जीना है समाज के लिए और जब भी ये बड़े लक्ष्य पैदा किए जाते हैं तो व्यक्ति की कुर्बानी दी जा सकती है। फिर व्यक्ति निहत्था हो जाता है। वह कहता है, क्या कर सकते हैं? इतना बड़ा समाज है, उसके हित में कुर्बानी देनी है। आज तक मनुष्य-जाति ने जितनी हत्याएं की हैं, वह इसी तरकीब से की हैं। कोई इस्लाम के लिए मर रहा हे, कोई इस्लाम के लिए मरवा रहा है कि जाओ, मरो, इस्लाम के लिए तो बहिश्त निश्चित है। अपने लिए मत जीओ, जीओ इस्लाम के लिए। कोई कह रहा है, हिंदू होने के लिए जीओ, हिंदू के मंदिर की मूर्ति के लिए जीओ। मूर्ति बचे, तुम मिटो, कोई फिकर नहीं। तुम मर जाओ, लेकिन मूर्ति को बचाओ, मंदिर को बचाओ। कोई कहता है, हिंदुस्तान के लिए जीओ; कोई कहता है, पाकिस्तान के लिए। कोई कहता है, चीन के लिए, कोई कहता है, समाजवाद के लिए जीओ। कोई भी नहीं कहता कि प्रत्एक अपने लिए जीओ। जब कि वही सहज और सरल है। लेकिन सरल और सहज सत्य छूट जाते हैं, हमारे खयाल से उड़ जाते हैं। उनका खयाल भी भूल जाता है। हर आदमी अपने लिए ही जी सकता है और अगर हमने जोर-जबरदस्ती की तो वह पाखंडी हो जाएगा। इसलिए हमारे सेवक निश्चित अनिवार्यरूपेण पाखंडी हो जाते हैं, क्योंकि वह जीते तो अपने लिए है, लेकिन दिखाते फिरते हैं कि वह किसी और के लिए जी रहे हैं। एक दोहरी जिंदगी हो जाती है। भीतर कुछ होते हैं, बाहर कुछ होते हैं--होगा ही।
नेता दिखाता है कि वह सारे राष्ट्र के लिए मरा जा रहा है। अपनी कुर्सी
के लिए मरता है, लेकिन सारे राष्ट्र की बात करता है। सारा राष्ट्र यानी वह कुर्सी, जिस पर वह बैठा है। यदि वह कुर्सी नहीं, तो सारा राष्ट्र कहीं भी जाए, उससे फिर कोई मतलब नहीं। राजनीतिक मरा जा रहा है देशों के लिए, वादों के लिए, संस्कृतियों के लिए, सभ्यताओं के लिए। धर्मगुरु मरे जा रहे हैं धर्मों के लिए, संप्रदायों के लिए, लेकिन कोई भी इन सबके लिए नहीं मर रहा है। ये सब बातें हैं। मर रहा है अपने पद, अपनी प्रतिष्ठा, अपने अहंकार के लिए। लेकिन इस सीधे सत्य को हम कब स्वीकार करेंगे? स्वीकार न करने के कारण हिपोक्रेसी पैदा होती है, स्वीकार न करने के कारण पाखंड पैदा होता है और पाखंड इतने जाल बुनता है कि जिंदगी बिल्कुल गलत रास्ते पर भटक जाती है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि स्वार्थी होना स्वस्थ होना है, इसमें कुछ
भी पाप नहीं है और मैं तो मानता हूं कि महावीर, बुद्ध या क्राइस्ट से ज्यादा स्वार्थी आदमी पृथ्वी पर दूसरे नहीं हुए हैं। क्यों? क्योंकि वे निपट अपने आनंद, अपने मोक्ष, अपनी आत्मा, अपने परमात्मा की खोज के लिए जी रहे हैं और मजे की बात यह है कि उनसे बड़े परोपकारी कहीं भी नहीं हुए; क्योंकि जो आदमी अपने को पा लेता है वह अपने को बांटना शुरू कर देता है। जब अपने को पा लेता है तो एक नया आनंद शुरू होता है अपने को बांटने का। और जब कोई आदमी भीतर आनंद से भर जाता है तो करेगा क्या?
कभी आपने खयाल किया है? आनंद जब भी भीतर भर जाता है तो जैसे बादल बरसना चाहते हैं वैसे आनन्द भी बंटना चाहता है, लेकिन वह भी स्वार्थ है। इसी तरह जब कोई आदमी भीतर दुख से भर जाता है तो दुख भी बरसना चाहता है। वह दूसरे को दुखी करेगा, इसलिए ए जो शहीद तरह के लोग चारों तरफ घूमते रहते हैं--कोई मां- बाप की शक्ल में घूम रहा है, कोई शिक्षक की शक्ल में घूम रहा है, कोई नेता, कोई गुरु तो कोई महात्मा की शक्ल में। असल में ए जो शहीद दूसरे के लिए जीने की कोशिश कर रहे हैं--ये बड़े खतरनाक लोग हैं, क्योंकि पहले तो ये अपने फूल को न खिला पाएंगे और भीतर दुखी होते चले जाएंगे; और जितने दुखी होंगे उतनी ज्यादा सेवा करेंगे और जितनी ज्यादा सेवा करेंगे उतनी आपकी गर्दन दबाएंगे कि मैंने आपकी सेवा की है, अब इसका बदला चाहिए। उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले जिन-जिन लोगों ने इस देश की सेवा की थी, वे उन्नीस सौ सैंतालिस के बाद बदला ले रहे हैं। सेवा का बदला चल रहा है। वह जेल गए, वह सर्टिफिकेट लेकर खड़े है कि यह है मेरे पास सर्टिफिकेट। अब राष्ट्रपति का पद चाहिए। लेकिन हमने कब कहा हक जेल जाने से राष्ट्रपति का पद मिलता है? आपकी बड़ी कृपा थी, आप जेल गए, आपको मजा आया होगा। आप आजादी के लिए लड़े, यह आपकी खुशी रही होगी। किंतु परिणाम स्वरूप अब तुम क्या सदा के लिए मुल्क की गर्दन बांधोगे? किसने तुमसे कहा था? लेकिन सेवक बदला मांगता है। बदले के सिक्के कोई भी हो सकते हैं। इसलिए सेवक कब एकदम से मालिक हो जाता है, पता नहीं चलता। सेवक, मालिक होने की तैयारी ही कर रहा है। दुनिया में सच्ची सेवा केवल वे ही लोग कर पाते हैं जो परम स्वार्थी हैं। परम स्वार्थी का मतलबः जो अपने हित, अपने कल्याण को पूरी तरह खोजते हैं। जिस दिन उन्हें अपना मंगल, अपना सुख, अपना आनंद मिल जाता है, अनिवार्यरूपेण दूसरे के जीवन में उनका सुख फैलना शुरू हो जाता है। करिएगा क्या? जिस दिन सब भीतर होना-- बहेगा, बंटेगा। लेकिन तब वैसा व्यक्ति जानता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूं, वह मेरी खुशी है।
बुद्ध एक गांव में गए। उस गांव के लोगों ने कहा, आपने बड़ी कृपा की है
कि इतने मील चल कर आए हमें समझाने। बुद्ध ने कहाः ऐसी बात मत करो। तुमने बड़ी कृपा की है कि मैं बोलने आया और तुम सुनने आ गए हो। मैं भर गया हूं और कुछ बरसना चाहता हूं। तुम न आओ तो मैं तुम्हें खोजता हुआ आऊंगा, जैसे बादल खोज रहा हो सूखी जमीन, कहां बरस जाए! नदी खोज रही हो सागर कि कहां ढलक जाए! फूल खोज रहा हो सूरज कि कहां बिखर जाए! बुद्ध ने कहा कि मैं भर गया हूं किसी चीज से और उसे बांटने के लिए तुम्हें खोजता आ रहा हूं, तुम मुझे धन्यवाद मत दो। अनुगृहीत मैं हूं कि तुम आ गए और तुम्हें मैं बांट सकूंगा।
जो जानते हैं वे भलीभांति जानते हैं कि सेवा भी बहुत गहरा स्वार्थ है। वह सेवा करने वाला का आनंद है; लेकिन यह आनंद तभी होगा, जब हम स्वार्थ को स्वीकार कर लें। पूंजीवाद की व्यवस्था अत्यंत नैसर्गिक व्यवस्था है। वहां हम किसी को किसी पर बलिदान नहीं कर रहे हैं। प्रत्एक व्यक्ति अपने लिए जी रहा है, जीनेकी खोज कर रहा है। इस खोज से दूसरे के लिए भी जीएगा; क्योंकि कोई भी आदमी अकेला नहीं जी सकता है। जीने का मतलब ही संघर्षो में जीना है। और जब सारे लोग अपना सुख खोजते हैं, तब अनिवार्यतः वे शेष के लिए भी सुख का स्रोत बन जाते हैं। अगर हजार आदमी यहां बैठ कर अपना सुख खोजें तो हजारगुना सुख कल पैदा हो जाएगा। वह सुख बंटेगा, वह जाएगा कहां? लेकिन प्रत्येक आदमी दूसरे के लिए कुर्बानी करे, अपना सुख न खोजे और हजार आदमी में हर आदमी नौ सौ निन्यानबे के लिए कुर्बानी करता रहे, वहां दुख की दुख इकट्ठा हो जाएगा। वहां सुख इकट्ठा नहीं हो सकता।

मेरे मित्र, जिन्होंने पूछा है--उन्होंने यही कहा है कि स्वार्थ के कारण ही तो दुनिया बरबाद है।
मैं आपसे कहना चाहता हूं कि स्वार्थ के कारण नहीं, परोपकार की अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक शिक्षाओं के कारण दुनिया परेशान है। अगर आप सहज अपना ही सुख खोज सकें तो काफी है। इतना ही कर दें दुनिया में आप, तो बहुप काफी है। जन्म और मृत्यु के बीच में अपना सुख खोज लें तो यह दुनिया आपको धन्यवाद देगी; क्योंकि जो आदमी अपना सुख खोज लेता है, वह दूसरे को दुख देना बंद कर देता है। क्यों? क्योंकि जो जानता है कि उसे सुख चाहिए, वह यह भी जान लेता है कि दूसरे को दुख देकर सुख लाना असंभव है। वह दूसरे को दुख देना बंद कर देता है; और जो आदमी यह जान लेता है कि दूसरे को
दुख देने से मेरा सुख कम होता है, वह यह भी बहुत जल्दी जान लेता है कि दूसरे को सुख देने से मेरा सुख बढ़ता है। यह गणित है सीधा। यह जिस दिन दिखाई पड़ जाता है, उस दिन जिंदगी में क्रांति हो जाती है।
लेकिन दुनिया के सारे धर्म त्याग सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं, त्याग करो, वे कहते हैं, स्वयं को छोड़ो, वे कहते हैं, स्वार्थ छोड़ो। वैसे स्वार्थ शब्द का अर्थ बड़ा साफ है। स्वार्थ का अर्थ है, स्व के लिए जो अर्थपूर्ण हो। स्व का मतलब है आत्मा, जो अपने हित में... लेकिन जो मेरे हित में है--क्या जरूरी है कि वह आपके अहित में हो? जितनी गहराई में उतरेंगे, उतना ही पाएंगे कि जो मेरे हित में हो सकता है वह वस्तुतः आपके अहित में नहीं हो सकता है, क्योंकि बहुत गहरे में हम सबके प्राण कहीं संबंधित और एक हैं। यह असंभव है कि जो मेरा हित हो बहुत गहरे में वह आपका अहित हो जाए। उलटी बात सच है कि जो आपका अहित हो, वह अनजाने में मेरा भी अहित हो जाए।
मैं एक पहाड़ पर गया था। उस पहाड़ पर एक ईको-पॉइंट था। मेरे साथ दस-पांच मित्र गए थे। उनमें एक मित्र थे--उस ईको-पॉइंट पर जैसी आवाज की जाए, पहाड़ वही आवाज दोहराता था। वह मित्र कई जानवरों की आवाज जानते थे। उन्होंने कुत्ते की आवाज में भोंकना शुरू कर दिया। उस पहाड़ से कई हजार कुत्ते भोंकने लगे। सौ गुनी आवाजें होकर लौटने लगीं। कुत्ते ही कुत्ते पहाड़ पर फैल गए। मैंने उन मित्र से कहाः देख रहे हैं, आपने एक कुत्ते की आवाज की, चारों तरफ से हजार कुत्ते भोंकने लगे। अपनी ही आवाज के कारण आप हजार कुत्ते की आवाज में घिर गए। कितना अच्छा हो कि कोयल की आवाज में बोलो! वह जानते थे। उन्होंने कोयल की आवाज निकाली। पहाड़ कोयल की मधुर आवाज से गूंजने लगा। फिर वह उठ आए और सहज चुप हो गए। कोई घड़ी भर बाद उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे ऐसा लगता है कि आपने कुछ इशारा किया। मैंने पूछाः क्या लगा? उन्होंने कहाः मुझे ऐसा लगा कि यह प्रतिध्वनि वाला पहाड़ पूरी जिंदगी की तस्वीर है। हम वहां जो हो जाते हैं वही लौट आता है हजार-हजार गुना होकर। कुत्ते की आवाज बोलेंगे तो कुत्तों से घिर जाएंगे। दुख देंगे तो दुख बरस जाएगा, कांटे फेकेंगे तो कांटे लौट आएंगे, आनंद बांटेगे तो आनंद हजार गुना होकर बहने लगेगा, प्रेम देंगे तो प्रेम लौट आएगा, क्रोध लौट आएगा। जिंदगी एक प्रतिध्वनि है।
लेकिन इसलिए मैं कहता हूं कि मैं स्वार्थ के विरोध में नहीं हूं। यदि
आप अपना ही स्वार्थ खोज लें, तो इस जगत के लिए इतने परोपकारी सिद्ध होंगे कि और किसी भांति नहीं सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए मैं स्वार्थ की व्यवस्था का विरोध नहीं करता हूं, पुरा समर्थन करता हूं। और स्वार्थ की व्यवस्था ही विकसित होते-होते समाजवादी व्यवस्था बन सकती है; क्योंकि सारे लोग अपना स्वार्थ खोजें, नहीं तो कल उन्हें दिखाई पड़ जाएगा कि बहुत सी जगह हम एक दूसरे के स्वार्थ में व्यर्थ बाधक बन रहे हैं। वह बाधाएं भी हटा लें। अपने स्वार्थ को, सुख को, हजार गुना कर लें, तो आज नहीं तो कल, मनुष्य-जाति समाजवाद के करीब पहुंच सकती है--स्वार्थो के संघर्ष से नहीं, बल्कि स्वार्थ के सहयोग की खोज से।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि पूंजीवाद में भ्रष्टाचार, ब्लैक मार्केटिंग है, रिश्वत है। इन सबके लिए आप क्या कहते हैं?

इस सबका कारण पूंजीवाद नहीं है। इस सबका कारण पूंजी का कम होना है। जहां पूंजी कम होगी वहां भ्रष्टाचार नहीं रोका जा सकता। लोग होंगे बहुत, पूंजी होगी कम, तो लोग सब तरह के रास्ते खोजेंगे पूंजी की मालकियत करने के। अगर दुनिया से भ्रष्टाचार मिटाना हो तो भ्रष्टाचार मिटाने की फिकर ही न करें। भ्रष्टाचार सिर्फ बाई-प्रॉडक्ट है, उससे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन सारे नेता भ्रष्टाचार मिटाने में लगे हैं, सारे साधु भ्रष्टाचार मिटाने में लगे हैं। वे कहते हैं, हम भ्रष्टाचार मिटाएंगे, जब कि असली सवाल यह है कि संपत्ति कम है, भ्रष्टाचार होगा। भ्रष्टाचार संपत्ति के कम होने का स्वाभाविक परिणाम है। अगर हम हजार लोग यहां हैं और खाना दस आदमियों के लिए है, तो क्या आप समझते हैं कि खाना चोरी से प्राप्त करने की कोशिश नहीं की जाएगी?
एक मनोवैज्ञानिक समाजवादी हिटलर के किसी कारागृह में बंद था! उसने लिखा है कि वहां जाकर मुझे आदमी की असली तस्वीरों का पता चलना शुरू हुआ, क्योंकि चौबीस घंटे में एक ही बार रोटी मिलती थी और वह थी अत्यंत अल्प होती थी कि पेट न भर पाए। मैंने ऐसे लोगों को जो कवि थे, लेखक थे, डाक्टर थे, इंजीनियर थे, प्रतिष्ठित थे, कोई किसी गांव का मेयर था, उसको भी रात में दूसरों के बैग में से रोटी का एक टुकड़ा चुराते हुए देखा। जिनकी नैतिकता की सदा चर्चा थी, जिनके अभिनंदन होते थे, हजारों की थैलियां जिनको भेंट की जाती थीं, उस आदमी को भी एक सिगरेट के लिए घुटने टेक कर गिड़गिड़ाते देखा और किसी को कुछ नहीं लग रहा है कि क्या गलत हो रहा है। उसने खुद लिखा है कि मुझे जो पूरी रोटी मिलती थी वह पूरी तो नहीं थीं, एक वक्त का भी पेट नहीं भरता था और एक दफे उसे खा लो तो दिन भर तकलीफ होती थी; क्योंकि पेट भरा भी नहीं है, भूख बुझी भी नहीं है। और रोटी भी खत्म हो गई। उसने लिखा है कि एक टुकड़ा फिर खा लिया; थोड़ी देर भूख को सहा। फिर इस आशा में कल्पना देखते हुए कि अब थोड़ी देर में फिर एक टुकड़ा खा लेंगे, और थोड़ा रुको--ऐसे चौबीस घंटे में कई बार छोटा-छोटा टुकड़ा! उसने यह भी लिखा है कि यहां आकर मुझे पता चला है कि मैं चौबीस घंटे रोटी के संबंध में ही सोचने लगा हूं। ईश्वर, आत्मा, चेतन, अचेतन, साइकोलॉजी, एनालिसिस सब खो गए हैं--फिलासफी--सब गए। सदा से मैं सोचता था यही महत्वपूर्ण है, वहां जाकर अचानक पता चला कि रोटी ही सब कुछ है और उसने कहा--मैं भी नहीं कह सकता हूं कि अगर मुझे मौका मिल जाए तो मैं किसी की रोटी न चुरा लूं।
यह जो भ्रष्टाचार हे, यह तो रिश्वतखोरी है, इस बात का सबूत है कि देश में लोग ज्यादा है और संपत्ति कम है। इस सीधे से तथ्य को हम न समझेंगे। एक आदमी को जब बुखार चढ़ता है, तो कुछ लोग बुखार को बीमारी समझ लेते हैं। वे कहते हैं--इस आदमी का शरीर गरम हो गया है, एक सौ दो डिग्री बुखार है। ठंडा पानी डाल कर इसका बुखार इसी वक्त ठीक करो। वह उसको मार डालेंगे। बुखार बीमारी नहीं है, सिर्फ खबर है कि भीतर अव्यवस्था हो गई है। यह जो भ्रष्टाचार हमें दिखाई पड़ता है--यह बीमारी नहीं है, यह सिर्फ खबर है कि पूंजी कम और लोग ज्यादा हैं; लेकिन भ्रष्टाचार खत्म करना है, पूंजी बढ़ानी नहीं है, लोग कम करने नहीं है। लोगों को भगवान पैदा कर रहा है तो भगवान से बड़ा भ्रष्टाचारी इस वक्त फिर कोई भी नहीं है; क्योंकि लोग जितने पैदा होते जाएंगे, भ्रष्टाचार बढ़ेगा। संख्या बढ़ती जाएगी, संपत्ति पैदा नहीं करनी है और संपत्ति हम पैदा करेंगे और जनसंख्या भगवान पैदा करेगा तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। तालमेल बैठाना असंभव हो जाएगा। इधर हमको भगवान के इस निरंतर के वरदान पर रोक लगानी पड़ेगी। उनसे हाथ जोड़ कर कहना पड़ेगा कि अब बस, अब लोग नहीं चाहिए और अगर लोग भेजते हो तो सबके हाथ दस एकड़ जमीन और एक-एक फैक्टरी एक-एक आदमी के साथ भेजो, अन्यथा यह काम नहीं चलेगा।
लोग अनैतिक नहीं हैं, जैसा कि सारे धर्मगुरु और नेता समझते हैं। लोग अनैतिक नहीं है, स्थिति अनैतिक है कोई अनैतिक नहीं है। न कोई नैतिक होता है, न कोई अनैतिक। इस अनैतिक स्थिति में भी कोई अगर बहुत श्रम करे तो नैतिक हो सकता है; लेकिन तब उसकी कुल जिंदगी नैतिक होने में ही व्यय हो जाएगी। वह कुछ और नहीं कर पाएगा। बस किसी तरह अपने को चोरी से रोक ले, आंख बंद करके हाथ-पैर रोक कर खड़ा हो जाए। श्वास रोक ले, चोरी से रोक ले, बस यही उनकी उपलब्धि होगी। इसमें बहुत श्रम करके कोई नैतिक हो सकता है, लेकिन यह

स्थिति अनैतिक है। सिचुएशन इ.ज इम्मारल, और इसलिए इस स्थिति को बदलने का सवाल है, न कि भ्रष्टाचार रोको, "भ्रष्टाचार रोको" आंदोलन चलाओ, नारे लगाओ, भाषण दो। कोई भी नहीं रोक पाएगा। रुकेगा अपने आप अगर संपत्ति बढ़ती है, विकसित होती है। अगर हम संपत्ति इतनी पैदा कर लेते हैं कि संपत्ति काफी हो, तो कोई चोरी करने नहीं जाएगा।

एक मित्र ने पूछा है कि बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम--वे सब तो त्याग की बात कर रहे हैं! वे तो कहते हैं, त्याग करो और आप कहते हैं, संपत्ति बढ़ाओ!

मैं आपसे कहता हूं, संपत्ति बढ़ाओ। बुद्ध, राम, कृष्ण क्या कहते हैं पक्का तय करना मुश्किल है; लेकिन अगर वे यह कहते हैं कि संपत्ति मत बढ़ाओ तो गलत कहते हैं। मजा तो यह है कि जिनके पास संपत्ति ही न हो वे त्याग क्या करेंगे? बुद्ध कह सकते हैं कि त्याग करो। बुद्ध संपत्ति में पैदा हुए हैं। बुद्ध, यशोधरा को छोड़ कर जा सकते हैं, जंगल में बारह वर्ष तपश्चर्या के लिए। यशोधरा के लिए पीछे महल है और सब सुरक्षा है। अगर आज का कोई बुद्ध यशोधरा को छोड़ कर जाएगा बारह वर्ष, तो बारह वर्ष के बाद यशोधरा चकले में मिलेगी, घर पर नहीं मिलेगी। और बुद्ध अपने बेटे राहुल को छोड़ कर जा सकते हैं, लौट कर वह घर पर ही मिलता है; किंतु यदि आज छोड़ कर जाएंगे तो किसी यतीमखाने में या बंबई के किसी रास्ते पर भीख मांगता मिलेगा। पता लगाना मुश्किल होगा कि बेटा कहां है। बुद्ध के पास बहुत था। जिसके पास भी बहुत है वे छोड़ने की बात कर सकते हैं लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जिनके पास बहुत है उनकी बात उन्होंने मान ली है जिनके पास कुछ भी नहीं है।
इस देश के सारे मनीषी धनपति घरों से आए और इस देश की सारी जनता दीन और दरिद्र है। लेकिन उसने उन्हें मान क्यों लिया? उसका भी तर्क है। उससे उसे बड़ा सुख मिला। उसने कहाः देखो, धन कमा कर क्या करना है। बुद्ध के पास इतना धन था, वे छोड़ कर सड़कों पर भीख मांग रहे हैं; तो हम तो पहले ही से बुद्ध हैं, हम तो पहले ही से भीख मांग रहे हैं। हिंदुस्तान के दरिद्र मन को तृप्ति मिली। बुद्ध और महावीर ने जब सड़कों पर भीख मांगी, तो हम बड़े खुश हुए। हमने जो बुद्ध और महावीर के चरणों में श्रद्धा का सिर रखा उसका कारण बुद्ध और महावीर न थे, उसका कारण हमारी दीनता और दरिद्रता को मिली तृप्ति थी। क्या रखा है इन महलों में, कुछ भी सार नहीं है, नहीं तो महल वाले महलों को छोड़ कर कैसे आते? तो हम तो धन्य हैं कि पहले से ही महल में नहीं हैं।
लेकिन ध्यान रहे, महल को छोड़ कर सड़क पर खड़ा होना एक अलग अनुभव है और सड़क पर ही खड़ा रहना हो और महल पर कभी न गए हों तो यह बिल्कुल दूसरी स्थिति है। इसलिए बुद्ध भिखारी नहीं हैं, बुद्ध के भिखारीपन में भी एक सम्राट की हैसियत है और बुद्ध की चाल में एवं उनकी आंखों में भिक्षु का खयाल कहीं भी नहीं है। मालकियत है, वे छोड़ कर आए हैं, वे ठुकरा कर आए हैं। कुछ चीजें बेकार हो गई हैं, और एक हम हैं जिन्होंने उन चीजों का जाना ही नहीं। बेकार नहीं हुई, भीतर प्राण कह रहे हैं कि महल मिल जाए, लेकिन न महल खोजन की ताकत है, न महल खोजने का श्रम करना है, न महल खोजने की बुद्धिमत्ता जुटानी है। फिर हम कहते हैं, क्या करेंगे महल खोज कर? जिनके पास महल था वे महल छोड़ कर सड़कों पर भीख मांग रहे हैं। बेकार है महल, इस तरह हम अपने को समझा रहे हैं। भारत अपने को समझाता रहा और समझा-समझा कर मरता चला गया है। यह बड़ी कठिन बात है भारत के मन के सामने। किसी न किसी रूप में हमें यह समझ लेना चाहिए कि बुद्ध और महावीर और इस तरह के सारे लोग संपन्नता को छोड़ कर आए हुए लोग थे। इन्हें विपत्रता का पता नहीं हो सकता है। बुद्ध के पास बुद्ध के बाप ने सारी सुंदर स्त्रियां इकट्ठी कर दी थीं--जो भी उस समय राज्य में उपलब्ध हो सकती थीं वह सब खोज कर इकट्ठी कर दीं। अब बुद्ध जब स्त्रियों की तरफ नहीं देखते हैं तो बात और है। बुद्ध देख चुके स्त्रियों के आर-पार कि अब स्त्री में कुछ नहीं है। अब ऐसे आदमी, जिनको स्त्री कभी छूने को नहीं मिली, देखने को नहीं मिली, वह भी अपने घर में बैठ कर बुद्ध बनने की कोशिश कर रहे है। ऐसे लोग फंस जाएंगे इस कोशिश में। उनके चित्त को स्त्रियां ही स्त्रियां घेर लें तो आश्चर्य तो नहीं है न? स्त्री को आर-पार देख जाने के बाद एक छुटकारा है।

लेकिन स्त्री से दूर खड़े होकर जो ब्रह्मचर्य साध रहे हैं, ए यदि स्त्री से बुरी तरह बंध जाएंगे तो इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है न? अभाव में संतोष को पकड़ लेना एक बात है, लेकिन संपन्नता को विवेक से छोड़ देना बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन नेतृत्व मिल गया उनको और पूरा देश राजी हो गया, इसलिए
देश संपन्न नहीं हुआ, समृद्ध नहीं हुआ और हमने ऐसी फिलासफी पकड़ ली--ए फिलासफी ऑफ पावर्टी, जिसको पकड़ कर बैठ गए और अब उसमें बड़ा रस ले रहे हैं। बहुत हो चुका यह रस। खुजली खुजलाने का यह रस काफी हो चुका। इससे अब छुटकारा चाहिए।
देश की प्रतिभा को स्पष्ट रूप से समझ लेना पड़ेगा कि धन चाहिए और धन के चाहने में सबसे बड़ी जरूरत है कि धन मिल जाए तो ही आदमी धन के आर-पार जा सकता है। अन्यथा बहुत कठिन है। मैं यह नहीं कहता कि कोई एकाध आदमी नहीं जा सकता। किसी ने लिख कर भेज दिया कि फलां संत गरीब थे और वह चले गए। एकाध आदमी जा सकता है लेकिन नियम नहीं बनाया जा सकता एक आदमी के आधार पर।
इस गांव में मलेरिया फैल जाए और एक आदमी बिना मलेरिया के इंजेक्शन के
बच जाए तो इसको नियम नहीं बनाया जा सकता कि देखो, एक आदमी को इंजेक्शन नहीं लगा, उसको मलेरिया नहीं हुआ, इसलिए किसी को इंजेक्शन मत लगाओ। वह एक आदमी बच गया है, कुछ भूल-चूक हो गई मलेरिया के कीटाणुओं की; लेकिन यह नियम नहीं हो सकता और अगर इसको नियम बनाया तो पूरा गांव मरेगा और अगर पूरा गांव मरेगा तो इस आदमी के भी मरने की संभावना बढ़ जाएगी। हो सकता है, दूसरों को जो इंजेक्शन लगे हैं, वे ही इसको बचाने में कारगर हुए हों। इस तक बीमारी पहुंचने में रुकावट पड़ी हो।
एक आदमी को इस अपवाद का नियम बनाने की भूल नहीं करनी चाहिए। लेकिन हमारा देश कर रहा है। हमारा देश सामान्य मनुष्य से नियम नहीं बनाता। हमारा देश नियम बनाता है अपवादों को, एक्सेप्शन को। वह जो असामान्य है और अकेला है, उसको हम नियम बना लेते हैं। उसके अनुसार हम साधारण-साधारण जनों को व्यवस्थित, बदलने, नियमित करने की कोशिश करते हैं। असाधारण व्यक्तियों को साधारण आदमी के लिए आदर्श बनाना, साधारण आदमी की हत्या करने जैसा है; लेकिन यह हो रहा है आज तक। अब महावीर को आदर्श बना लो कि वह नग्न खड़े हैं और सारे लोगों को नग्न खड़ा कर दो तो कठिनाई हो जाएगी। महावीर वस्त्रों में रह चुके, महावीर वस्त्रों का सुख ले चुके, महावीर वस्त्रों में जी चुके। महावीर वस्त्रों का सुख ले चुके, महावीर वस्त्रों में जी चुके। महावीर को नग्न होने में जो आनंद है, उस आनंद में पहने गए वस्त्रों का हाथ है। इसलिए एक आदमी जो नंगा ही पैदा हुआ है, नंगा ही बड़ा हुआ है, वस्त्र देखे नहीं, दूर से देखी है चमक वस्त्रों की, उससे कहो नग्न रहने में आनंद है--तो वह क हेगा नग्न होने में क्या आनंदित होना है? वह कहेगा, महावीर कुछ विशेष होंगे, भगवान होंगे, तीर्थंकर होंगे, इसलिए नग्न रहे। मुझे तो कपड़े में बहुत आनंद आता है। लेकिन ध्यान रहे, महावीर कपड़ों के कारण नग्नता में आनंद ले पा रहे हैं, यह आदमी नग्नता के कारण कपड़ों में आनंद ले पाएगा। दोनों की चित्त-दशा में बहुत फर्क नहीं है। दोनों का तर्क एक ही है कि जो अनजाना है, अपरिचित है, वह सुखद है। जो परिचित है, वह व्यर्थ है। इसकी नग्नता परिचित होकर व्यर्थ हो गई है।
इन शिक्षाओं से मुक्त होना पड़ेगा। ये शिक्षाएं नॉन-डाइनैमिक सोसाइटी, स्टेटिक सोसाइटी पैदा करती हैं। इस शिक्षाओं ने एक मरा एवं रुका हुआ जड़ समाज पैदा किया है, जिसमें कोई बहाव नहीं है। एक बढ़ता हुआ, गतिमान समाज इनसे पैदा नहीं हो सका। अगर गतिमान समाज पैदा करना हो तो संतोष पर हीं, असंतोष पर आधार रखना पड़ेगा। यह जो हम निरंतर पूछते हैं कि हम गरीब क्यों हैं, हम गरीबी से संतुष्ट थे तो हम गरीब रहेंगे, क्योंकि अमीरी पैदा करनी पड़ेगी और पैदा वह करेगा जा गरीबी से असंतुष्ट हो। तभी अमीरी पैदा हो पाएगी, अन्यथा पैदा नहीं हो पाएगी। सम्पत्ति पैदा करनी है। संपत्ति कहीं रखी नहीं है कि हमें मिल जाए, अभी हम जाएं और मिल जाए। संपत्ति ह्यूमन क्रिएशन है और जो चीज मानवी सृजन है उसे पैदा करने के लिए उसकी मूलभूत जो जरूरत है, वह है एक असंतुष्ट खोजने वाला चित्त। हमारे पास चाहिए एक डिस्कटेंट माइंड, एक ऐसा मन जो असंतुष्ट है और सदा खोज रहा है। हमारी सारी

शिक्षाएं संतोष दिलाने वाली हैं। संतोष दिलाने वाली शिक्षाएं देश को जड़ बनाती हैं, गतिमान नहीं बनाती हैं।

मेरे एक मित्र ने पूछा है कि गांधी जी की कल मैंने बात की--उन्होंने पूछा है कि गांधी जी तो चाहते थे कि देश सुखी हो, देश समृद्ध हो, देश के लोग मंगल को, कल्याण को उपलब्ध हों... ?

जरूर चाहते थे। लेकिन नरक का रास्ता अच्छी चाहों से पटा हुआ है। अकेली अच्छी चाह का सवाल नहीं है। मैं बहुत चाहता हूं कि आपकी कैंसर ठीक हो और पानी पिला रहा हूं, तो कैंसर ठीक होने वाली नहीं है। मैं बहुत चाहता हूं कि आपकी टी.बी. ठीक हो, लेकिन ताबीज बांधता हूं तो चाह से टी.बी. ठीक न होगी। टी.बी. ठीक करने के विज्ञान को समझना पड़ेगा। गांधी जी कहते थे कि देश संपन्न हो, सुखी हो, लोग अच्छे हों, लेकिन गांधी जी जो भी तरकीबें बताते थे वह विपन्नता की, दरिद्रता की होती थीं। गांधी जी अगर सफल हो जाएं तो हिंदुस्तान का भाग्य सदा के लिए दरिद्र रह जाएगा। सच तो यह है कि अगर गांधी जी की बात मान ली जाए तो अभी पचास करोड़ की संख्या में से कम से कम हिंदुस्तान में पच्चीस करोड़ आदमी आज ही मरने की हालत में छोड़ देने पड़ेंगे।
अगर सारी दुनिया गांधी जी की बात मान ले, तो इसी समय साढ़े तीन अरब आबादी में से कम से कम दो अरब आदमी को गांधी की शिक्षा मानने से इसी वक्त मरना पड़ेगा। न तो चंगीज, न हिटलर, न स्टैलिन, न माओ और न सब दुनिया के हत्यारे मिल कर जितना मनुष्य को मार सके, उतना गांधी जी का विचार अकेला मार सकता है। क्यों? क्योंकि गांधी जी जो बातें कर रहे हैं, वह औद्योगिक युग के पहले की, सामंती युग की बातें हैं। उस सामंती युग के जिन उपकरणों की वे बात कर रहे हैं, चर्खा और तकली की, वह सारे के सारे उपकरण इतनी बड़ी मनुष्यता के लिए उपयोगी नहीं हैं। वे इसे जिंदा नहीं रख सकते। ये आदमी मर जाएंगे अभी। तो गांधी जी जो देखने में इतनी बड़ी अहिंसा की बात करते हैं, भूल कर उनकी बात मत मान लेना, नहीं तो बाद में इतिहास लिखेगा कि इससे बड़ा हिंसक आदमी नहीं हुआ; क्योंकि इतने लोग इसने मार डाले। इतने लोगों को जीने के लिए तकनीकी उत्पादन की वैज्ञानिक व्यवस्था चाहिए। लेकिन गांधी जी जो व्यवस्था सुझा रहे हैं, वह रामराज्य के जमाने की है, जब दुनिया की आबादी इतनी छोटी थी कि उस व्यवस्था से काम चल सकता था। उस दिन चर्खा-छाप धीमी और शिथिल व्यवस्था से काम चल सकता था। आज तीव्र व्यवस्था चाहिए। इतने मुंह हैं, इतने सिर है, इतने लोग हैं। आदिम व्यवस्था से गांधी जी इन्हें बचा सकते हैं। गांधी जी की बात मानी तो दरिद्रता पक्की हो जाएगी।

और उन मित्र ने पूछा है कि आप गांधी जी की आलोचना करते हैं, जब कि उनका व्यक्तित्व और उनके विचार और आचार में सदा एकरूपता थी!

इससे बड़ी झूठी कोई और बात नहीं हो सकती है। गांधी जी के आचार और विचार में इतनी बड़ी खाई थी कि जितनी दुनिया में शायद ही किसी आदमी के विचार और आचार में रही हो। आप कहेंगे, कैसी हैरानी की बात करते हैं?
गांधी जी जिंदगी भर रेलगाड़ी का विरोध करते रहे और जिंदगी का ज्यादा समय रेलगाडी में ही बिताया। जिंदगी भर विरोध किया एलोपैथी का और कहते थे, रामनाम ही सबसे बड़ी दवा है, लेकिन जब भी मरने के करीब पहुंचे, एलोपैथी की सहायता ली और बचे। न तो राम-नाम से बचे, न नेचरोपैथी से बचे। मरने के पहले जरूर सब उपाय कर लेते थे। नेचरोपैथी, रामनाम सब जब हो गया और जब मरने के करीब पहुंचे तो एलोपैथी ने बचाया। पूरी जिंदगी एलोपैथी का विरोध करते रहे और पूरी जिंदगी एलोपैथी उनको बचाती रही। पूरी जिंदगी रेलगाड़ी का, तार का, पोस्ट आफिस का विरोध किया और जितनी चिट्ठियां उन्होंने लिखीं, पोस्ट आफिस का उपयोग किया--मैं नहीं समझता मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी और आदमी ने ऐसा किया हो। गांधी जी दुश्मन हैं ट्रेन के। ट्रेन में नहीं चलना है, ट्रेन का होना पाप है, ट्रेन इस दुनिया से हट जानी चाहिए। सारे नये उपकरण के विरोधी और सब नये उपकरणों का उन्होंने पूरी तरह उपयोग किया और लोग कहते

हैं उनके आचार-विचार में बड़ी एकता है। कैसी एकता है आचार-विचार में? वे जो कह रहे हैं कर कभी नहीं पा रहे हैं और जो कर रहे हैं वह बहुत भिन्न है--अगर उनकी पूरी जिंदगी की व्यवस्था को ठीक से देखें। लेकिन जिसको हम महात्मा मान लेते हैं उसकी तरफ हम आंख बंद कर लेना जरूरी समझते हैं।
मेरी तो उनसे एक ही दफा मुलाकात हुई और दुबारा नहीं हुई। मुझे आकांक्षा भी नहीं हुई। बहुत छोटा था, तब उनसे मिलने गया था। मेरे गांव से वे निकल रहे थे। सारा गांव जा रहा था तो मैं भी गया था और बहुत छोटा था। मेरी मां ने मेरी जेब में तीन रुपये रख दिए थे कि वहां स्टेशन पर भीड़-भाड़ होगी, खाना-पीना, आना-जाना, तीन-चार मील का रास्ता भी था। स्टेशन के प्लेटफार्म पर बहुत भीड़ थी तो यह सोच कर कि इतनी भीड़ में मुझ छोटे से बच्चे को तो उन्हें देखना भी मुश्किल होगा, इसलिए मैं प्लेटफार्म की दूसरी तरफ चला गया जहां प्लेटफार्म नहीं था। गांधी जी की गाड़ी आई, मैं उनकी खिड़की में चढ़ कर भीतर भी चला गया। उनकी नजर मुझ पर नहीं गई--मेरे मलमल के कुर्ते में वह जो तीन रुपए का वजन लटका हुआ था और रुपए दिखाई पड़ रहे थे, उन पर गई। उन्होंने जल्दी से कहाः यह क्या है? तीन रुपये निकाल लिए और कहा कि हरिजन-फंड में दे दो बेटे और हरिजन-फंड की पेटी में डाल दिए। मैंने कहा, ठीक है। मैं इससे खुश भी हुआ। सोचा कि अच्छा हुआ कि मैंने रुपये पहले ही खर्च नहीं कर दिए। लेकिन जैसी कि मेरी बुद्धि है, तो चलते समय मैंने वह पेटी उठा ली और कहा कि यह पेटी मैं ले जाता हूं। मेरे स्कूल के गरीब बच्चों के काम ये रुपये आ जाएंगे। ले जाने की कोई बात न थी। ले भी मैं नही जाता, लेकिन जानना चाहता था कि गांधी जी क्या कहते हैं। उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, पेटी मत उठाओ, यह हरिजन-फंड की पेटी है। मैंने उनकी आंखों में झांका। जिस व्यक्ति को मैं खोजने आया था, वह व्यक्ति वहां नहीं था!
मैं नीचे ट्रेन से उतर कर खड़ा हो गया। ट्रेन चली गई और उस भीड़ में वह मुझको देखते रहे, क्योंकि उनकी समझ में भी शायद खयाल आया हो कि क्या हो गया है? घर लौटने पर मेरी मां ने मुझसे पूछा कि महात्मा जी से मिले? मैंने कहाः महात्मा जी आए ही नहीं। उसने कहाः क्या मतलब? सब लोग तो कह रहे थे, निकले ट्रेन से। मैंने कहा, निकले श्री मोहनदास कर्मचंद गांधी, महात्मा जी नहीं। मेरी मां नहीं समझी। उसने कहाः क्या मतलब है तुम्हारा? मैंने कहाः श्री मोहनदास कर्मचंद गांधी कुशल दुकानदार है, सफल बनिया है। और उसके बाद मैंने गांधी जी को बहुत समझने की कोशिश की और जितना मैंने समझने की कोशिश की, मेरी जो पहली उनके संबंध में धारणा बनी वह धारणा मिटी नहीं, और मजबूत होती गई। मैं यह नहीं कहता कि मेरी धारणा को कोई माने लेकिन इतना मैं जरूर कहता हूं कि किसी भी आदमी के संबंध में पथरीली धारणाएं नहीं बनानी चाहिए, अन्यथा देश के चिंतन को धक्का पहुंचता है, और अंततः यह धक्का घातक हो जाता है।
अब सबको यही खयाल है कि वह जो कहते थे, उससे देश का कल्याण होगी ही; क्योंकि वे महात्मा थे। महात्मा होने से ही कल्याण होता है, ऐसा भी नहीं है। अभी मैं गया राजकोट। वहां जिस मैदान में मेरी सभा थी, वहां मैंने बहुत गाय-बैल खड़े देखे। मरी हालत में थे। मैंने पूछाः ये क्यों इकट्ठे हैं? तो पता चला कि जहां-जहां पानी की कमी है वहां-वहां से इनको इकट्ठा कर लिया गया है। इनको बचाने की कोशिश की जा रही है। जिनसे मैंने पूछा, उन्होंने कहा कि एक बहुत अदभुत बात आपको बताऊं? एक महात्मा अभी आए और उन्होंने इन सबको मोतीचूर के लड्डू खिलाए। उस दिन चालीस गाएं मर गईं। महात्मा का फोटो अखबार में छपा कि कितनी महान आत्मा है। गायों को मोतीचूर के लड्डू खिला रहे हैं! लेकिन महात्मा होने में ऐसा लगता है कि अक्ल का न होना जैसे बहुत जरूरी है। भूखी गरीब गाय को, जिसको पानी नहीं, भोजन नहीं मिलता है उसको मोतीचूर के लड्डू खिला रहे हैं तो इससे तो छाती में छुरा मारना ज्यादा आसान है। उससे गाय सुविधा से मरेगी, शांति से मरेगी। मोतीचूर के लड्डू से चालीस गाएं मरीं, लेकिन महात्मा ने मोतीचूर के लड्डू खिलाए और लोगों ने कहा कितना अदभुत गऊभक्त महात्मा है, मोतीचूर के लड्डू खिला रहा है! हिंदुस्तान की गरीबी गांधी जी की बात से मिटेगी नहीं, क्योंकि गरीबी मिटाने के लिए टेक्नालॉजी चाहिए और गांधी जी टेक्नालॉॅजी के सबसे बड़े दुश्म हैं। वे कहते हैं, टेक्नीक नहीं चाहिए, टेक्नीक शैतान का आविष्कार

है। जब कि टेक्नालॉजी ही मनुष्य को बचाएगी और टेक्नालॉजी ही मनुष्य की दरिद्रता मिटाएगी और टेक्नालॉजी ही कल जब जमीन पर ज्यादा लोग हो जाएंगे तो उनको चांद पर पहुंचाएगी, मंगल पर पहुंचाएगी, क्योंकि पचास साल के बाद जमीन पर रहने योग्य जगह नहीं रह जाएगी। मैं नहीं जानता गांधी जी के चरखे के द्वारा किस भांति आदमी को चांद पर पहुंचाया जा सकेगा। मैं नहीं जानता कि गांधी जी के चरखे के द्वारा किस तरह अरबों, खरबों लोगों को भोजन और कपड़े दिए जा सकेंगे। लेकिन डर कोई नहीं है, क्योंकि गांधी जी की जय बोलने वाले भी उनको मानते नहीं हैं। लेकिन खतरा हो सकता है। अगर उन्हें माना जाए तो दुनिया को दो हजार साल पीछे लौटा कर वे रख दें। जिसे वे राम-राज्य कहते हैं, वह अत्यंत पिछड़ी हुई व्यवस्था का नाम है, आज की इस व्यवस्था से बहुत ज्यादा पिछड़ी हुई व्यवस्था का नाम है, लेकिन वे उसकी ही आकांक्षा करते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि आप जो कह रहे हैं--यही तो पुरानी हिंदू संस्कृति कहती है, यही तो पुरानी हिंदू संस्कृति का असली समाजवाद है!

मैं कुछ समझा नहीं कि वे क्या पूछ रहे हैं।
उन्होंने यह भी लिखा है असली समाजवाद हिंदुस्तान में पहले हो चुका है!
दुनिया में कभी नहीं हुआ और हिंदुस्तान में तो बिल्कुल नहीं हुआ, न अतीत में कभी होने की संभावना ही थी। जिसको आप पुरानी संस्कृति कहते हैं उससे जितनी जल्दी छूटें, उतना अच्छा है। सिर्फ अपनी होने से बीमारी अच्छी नहीं हो जाती। लेकिन जिस जाल में हम जकड़े होते हैं हजारों साल से, वह अच्छा लगने लगता है। किस चीज को आप कह रहे हैं? कब था समाजवाद भारत में? जिन्होंने यह पूछा है उन्होंने यह कहा है कि सब अच्छी बातें भारत में थीं, वहीं लौट चलना चाहिए।
कोई अच्छी बात नहीं थी जहां लौटने की जरूरत हो। अगर अच्छी बात होती तो
हम उसे छोड़ कर ही न आए होते। अच्छी बात छोड़ कर कभी भी कोई नहीं जाता है और अगर जाता है तो और अच्छे की तलाश में ही जाता है। लेकिन हम बड़े भ्रम में हैं। हमारा खयाल है कि भारत सोने की चिड़िया थी। कभी नहीं थी। हां, कुछ लोगों के लिए थी, कुछ लोगों के लिए आज भी है, सबके लिए कभी भी नहीं थी। हम सोचते हैं कि भारत में कभी ताले नहीं पड़ते थे। लोग इतने अच्छे और ईमानदार थे कि घरों में ताले नहीं पड़ते थे। मुझे नहीं समझ में आता है कि यह बात सच हो सकती है। होगी सच तो कारण कुछ और होंगे, जो हम सोचते हैं वह नहीं है। क्योंकि बुद्ध लोगों को समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, महावीर समझा रहे हैं कि चोरी मत करो। अगर लोग इतने अच्छे थे कि ताले की जरूरत नहीं थी तो बुद्ध और महावीर का दिमाग खराब रहा होगा--किसको समझ रहे हैं कि चोरी मत करो? चोरी बराबर थी। तब एक ही मतलब निकलता है कि ताले उन घरों पर नहीं होंगे जिनके भीतर चुराने को कुछ भी न हो और कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। या ताले बनाने की अक्ल पैदा न हुई होगी या घर के भीतर ताले लगाने जैसा कुछ न होगा। लेकिन ताले नहीं थे, यह इस बात का सबूत नहीं है कि लोग चोर न थे; क्योंकि सारे शास्त्र कह रहे हैं कि चोरी मत करो। बुद्ध सुबह से शाम तक यही समझाते हैं कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, यह मत करो, वह मत करो। यह सारे लोग क्यों समझा रहे हैं यह बातें? सुकरात ढाई हजार साल पहले भी यूनान में यही कहता गया है कि लड़के बिगड़ गए हैं, कोई मां-बाप की नहीं सुनता, शिक्षक का कोई आदर नहीं है। लोग बेईमान हो गए हैं, भ्रष्टाचारी हो गए हैं।
छह हजार साल पुरानी किताब है चीन में। उसकी भूमिका अगर पढ़ें तो ऐसा लगता है कि आज के ही सुबह के अखबार का एडिटोरियल है। उसमें लिखा है कि लोग बहुत बिगड़ गए हैं, नैतिक ह्नास हो गया है। लोग भौतिकवादी हो गए हैं, भ्रष्टाचार फैल गया है, कोई किसी की सुनता नहीं, ऐसा लगता है कि महाप्रलय निकट है। वह छह हजार साल पहले की किताब है और उसमें लिखा भी है कि पहले के लोग अच्छे थे। पहले के लोग अच्छे थे, यह मिथ और कल्पना से ज्यादा नहीं है। असल में पहले के लोगों को हम भूल चुके और जो थोड़े से लोग हमें याद रह गए हैं, उनके कारण ही सब गड़बड़ होती है। महावीर याद हैं, महावीर के समय का आम

आदमी हमें याद नहीं है तो लगता है कि महावीर के जमाने में सब लोग अच्छे रहे होंगे। महावीर के जमाने में अगर सब लोग अच्छे होते, तो महावीर की हमें याद भी न आती अब तक। महावीर अब तक दिखाई इसीलिए पड़ रहे हैं। स्कूल में तख्ते पर मास्टर लिखता है तो काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखता हैं। सफेद दीवाल पर लिखे तो लिख भी सकता है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा, काले तख्ते पर दिखाई पड़ता है। महावीर ढाई हजार साल तक दिखाई पड़ते है कि एक महापुरुष थे। जब तक समाज का तख्ता बिल्कुल ब्लैक-बोर्ड न रहा हो, तब तक ढाई हजार साल तक दिखाई नहीं पड़ सकते कि वे महापुरुष थे। दस-पांच महापुरुष मनुष्य-जाति में दिखाई पड़ते हैं। बाकी सारी मनुष्यता एक काले तख्ते की तरह है जिसके ऊपर लकीरें उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं, लेकिन कोई मनुष्यता कभी अच्छी नहीं थी। जितनी अच्छी आज है, उतनी अच्छी भी नहीं थी। हम रोज अच्छाई की तरफ विकास कर रहे हैं। लेकिन एक धारणा हमारे मन में है कि पतन हो रहा है। पहले सतयुग हो चुका, गोल्डन ए.ज हो चुकी, अब कलियुग है, अब तो पतन ही पतन है। जिस कौम के मन में यह भाव बैठ जाएगा कि आगे पतन है उसका पतन निश्चित है, क्योंकि भाव ही गतिमान करते हैं। हम अपने स्वर्ण-युग को पीछे रखे बैठे हैं। सब अच्छा हो चुका। अब तो सब बुरा होना है, यह हमने पक्का मान लिया है, यह हमारे प्राणों में बैठ गया है। यह हमारा संस्कार बन गया है। कि आगे बुरा--और बुरा होना है। तो बगल में जब कोई किसी को छुरा भोंकता है तो कहते हैं, आ गया कलियुग। जब कोई किसी की स्त्री को लेकर भाग जाता है, तो हम कहते हैं, आ गया कलियुग और आपके ऋषि-मुनि लेकर भागते रहे, तब सतयुग था और आपके देवी-देवता आकाश से उतर कर दूसरों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते रहे, तब सतयुग था और अब कलियुग आ गया, क्योंकि बगल का कोई आदमी ले गया है। अजीब बातें है। राम की औरत चोरी चली जाए तब सब अच्छी दुनिया है और अभी कोई दूसरे रामचंद्र जी पड़ोस में आपके रहते हों, उनकी औरत चोरी चली जाए तो कलियुग आ गया।
नहीं, आदमी रोज अच्छा हो रहा है। अगर भविष्य में अच्छा बनना है तो स्वर्ण-युग आगे है, अंधेरा पीछे है, प्रकाश आगे है। अगर भविष्य को निर्मित करना है तो आशा चाहिए और आशा न हो तो भविष्य निर्मित नहीं हो सकता। मेरी दृष्टि में मनुष्य के पैर जो इतने डगमगाए मालूम पड़ते हैं, उसका एक कारण यही है। आशा आगे नहीं मालूम पड़ती, आगे अंधेरा है, अंधेरा हम पैदा किए हुए हैं। इतना अच्छा आदमी पृथ्वी पर कभी नहीं था, जितना अच्छा आदमी आज है। अभी बिहार में अकाल पड़ा। दो करोड़ आदमी मर सकते थे उस अकाल में लेकिन मरे केवल चालीस। यहदो करोड़ आदमी कैसे बचे? सारी दुनिया दौड़ पड़ी। दूर-दूर देश के अनजान बच्चों ने अपने खाने के पैसे बचाए, आइस्क्रीम के पैसे बचाए, सिनेमा देखने के पैसे बचाए। सारी दुनिया दौड़ पड़ी। बिहार में कोई अनजान आदमी मर रहा है, जिससे कोई संबंध नहीं है, उसको बचाना है। ऐसा कभी नहीं हुआ था, पहली दफा हुआ है। आज वियतनाम में युद्ध हो तो भी यहां बंबई का प्राण भी कंपता है कि गलत हो रहा है। कहीं कुछ गलत हो रहा है, तो सारी दुनिया पीड़ा अनुभव करती है। मनुष्यता पहली दफा बोध को उपलब्ध हुई है। मनुष्य विकसित हुआ है, मनुष्य की समझ विकसित हुई है, मनुष्य का सुख विकसित हुआ है। लेकिन एक अंतिम बात...

दो-तीन मित्रों ने पूछा हैः आप अमरीका की इतनी तारीफ करते हैं, लेकिन वहां हिप्पी बढ़ रहे हैं, बीटनिक बढ़ रहे हैं, कोई एल एस डी ले रहा है, कोई मेस्कलीन ले रहा है, कोई शराब पी रहा है। लेकिन इतने अशांत हैं, नींद नहीं है--ट्रैंक्वेलाइजर चाहिए। ये सारी स्थितियां हैं और आप इतनी तारीफ करते हैं और कहते हैं, कि अमरीका में समाजवाद आएगा, वहां तो इतनी अशांति है... ?

आपको पता होना चाहिए, कोई जानवर अशांत नहीं होता है। सुना है कभी किसी भैंस को अशांत होते? सुना है कभी किसी गधे को रात कभी नींद न आई हो? नहीं सुना होगा। कभी सुना है कोई गधा बोर हुआ हो, ऊबा हो। कभी सुना है कि किसी बैल ने आत्महत्या कर ली कि जिंदगी बेकार है? कोई पशु न तो ऊबता है, न अशांत होता है, न चिंतित होता है, न आत्महत्या करता है। क्या कारण है? बुद्धि बहुत अविकसित होती है। बुद्धि जितनी विकसित होती है, उतनी सेंसिटिव होती है, उतनी संवेदनशीलता होती है, उतनी चीजें दिखाई पड़नी शुरू होती हैं, उतनी

समझ बढ़ती है। जितना चारों तरफ का फैलाव होता है, उतनी अर्थ और मीनिंग की खोज शुरू होती है। आज अमरीका में वह जो हिप्पी है या बीटल है या बीटनिक है या जो और तरक के बगावती लड़के हैं, वे इस बात की खबर हैं कि चेतना नये स्तर छू रही है। वहां चेतना नई चीजों को देख रहीं है जो हमें कभी दिखाई नहीं पड़ीं। मनुष्य की बुद्धि ज्यादा विकसित हुई है। उसकी ज्यादा विकसित बुद्धि उसे चिंता दे रही है। लेकिन ध्यान रहे, जितनी ज्यादा चिंता होगी उतनी बड़ी शांति को उपलब्ध किया जा सकता है। शांति और अशांति का तल हमेशा बराबर होता है। अगर कोई आदमी सिर्फ दो इंच तक अशांत हो सकता है तो वह दो ही इंच तक शांत भी हो सकता है। अगर कोई आदमी हजार मील तक अशांत हो सकता है, तो हजार मील तक शांत होने की क्षमता भी विकसित हो जाती है।
हमारे जीवन की क्षमता, हमारी पात्रताएं, दोनों दिशाओं में एक साथ बढ़ती हैं। अगर मेरे मन में कुरूप का बोध स्पष्ट हो जाए तो सौंदर्य का बोध भी उतना ही विकसित होता है। जिस आदमी को बहुत सौंदर्य का बोध होगा उस आदमी को कुरूपता का भी उतना ही बोध हो जाएगा, क्योंकि सौंदर्य उसे सुख देगा। जिस आदमी की जितनी बड़ी चेतना का विस्तार होगा, उतनी चिंता उसको घेरने लगेगी, क्योंकि दूसरे की चिंता भी उसके घेरे के भीतर आ जाएगी। आज मनुष्यता ज्यादा बुद्धिमान है, इसलिए ज्यादा चिंतित है। लेकिन ज्यादा चिंतित होने के कारण पीछे नहीं लौटना है, और आगे जाना है कि जितनी मनुष्यता चिंतित है उतने हम शांति के नये मार्ग खोज सके। पुराने मार्ग काम नहीं देंगे, नये मार्ग खोजने पड़ेंगे। मनुष्य एक कगार पर है, चेतना एक नई छलांग के निकट है। उदाहरण के लिए जब पहली दफा बंदर झाड़ के नीचे उतरा होगा और चार हाथ-पैर
को छोड़ कर दो हाथ-पैर से चला होगा, तो पहली बात यह कि बड़ा आकवर्ड मालूम हुआ होगा, और जो बंदर चार हाथ-पैर से चलने वाले वृक्षों पर बैठे होंगे उनके बुजुर्ग उन्होंने कहा होगा मूर्ख यह क्या कर रहा है, कितना बेहूदा मालूम पड़ रहा है? कहीं बंदर ऐसा चलते हैं दो हाथ से? और जो दो हाथ से चला होगा उसको तकलीफ भी हुई होगी, चिंता भी हुई होगी, उसकी रात रीढ़ दुखी होगी, जिंदगी खराब हुई होगी, वह परेशानी में भी पड़ गया होगा। लेकिन उसी बंदर से मनुष्यता विकसित हुई।
आज जो विकसित चेतना पीड़ा अनुभव कर रही है, आत्महत्या तक पहुंच गई है, वही मनुष्य चेतना एक नई मनुष्यता को जन्म देने के करीब है। मनुष्य में एक नई चेतना का उदभव निकट है, और ध्यान रहे इसमें आदिवासी जंगल के भागीदार न हो पाएंगे और ध्यान रहे, इसमें आपके मंदिरों और मस्जिदों में बैठे लोग भजन-कीर्तन कर लें, लेकिन भागीदार न पाएंगे। ये सब संतोष खोज रहे हैं, वे असंतोष से भयभीत हैं। आज तो असंतोष की आग में कूदने को जो राजी है और उस आग को भी पार करने की क्षमता दिखाए, वही नये मनुष्य को जन्म देने के सौभाग्य का भागीदार हो सकता है। हम अभागे हैं उस अर्थ में। अभी हम हिप्पी पैदा नहीं कर सकते, अभी हम उतने गहरे शांत भी नहीं हो सकते। अमरीका उस जगह खड़ा है एक वैंगार्ड की तरह, एक आगे की सीमा-रेखा पर जहां छलांग करीब है। इस छलांग के पहले बहुत बार मन होगा कि पीछे लौट जाएं। इसलिए तो श्री महेश योगी जैसे लोगों का वहां प्रभाव पड़ता है। यह पीछे लौटने वाले लोग श्री महेश योगी जैसे व्यक्तियों से प्रभावित हो रहे हैं। वे कह रहे हैं कि कहां के झंझट में पड़ते हो, छोड़ो चिन्ता आंख बंद करके राम-राम भजो, माला फेरो, पीछे लौट चलो। श्री गांधी जी का भी प्रभाव अमरीका पर पड़ा है। हिंदुस्तान से ज्यादा। उसका भी कारण यह है कि वह जो पीछे लौटने वाला बैकवर्ड माइंड है वह घबड़ा गया है छलांग से। वह कहता है, आगे खाई है, पीछे लौट चलो। ठीक कहते हैं गांधी जी, क्या जरूरत है टेक्नालॉजी की, इतने बड़े मकान का क्या करोगे, वापस लौटो।
लेकिन यह वापस लौटने वाला नारा सदा से था। इससे कोई हित नहीं हुआ है। जाना है आगे, पीछे लौटा नहीं जा सकता। उपाय भी नहीं है। हो भी उपाय तो लौटना खतरनाक है, क्योंकि अब पीछे लौट कर कुछ नहीं पाया जा सकता है। एक बार एक बच्चा चौथी क्लास में आ गया, अब कितना ही मन कहता हो, पहली क्लास में लौट चलो, बड़े सरल सवाल थे वहां, तो भी कोई मतलब नहीं। उसे लौटा भी दो तो अब सवाल बेमानी दिखाई पड़ेंगे। पहली क्लास को तीन क्लास की प्रौढ़ता आ गई। मनुष्य का चित इतना विकसित हो गया है कि उसे रामराज्य में नहीं ले जाया जा सकता

है, उसे कोई प्रीमीटिव सोसाइटी में नहीं ले जाया जा सकता है। हां, यह हो सकता है, एक-दो दिन के लिए अच्छा लगे, जंगल चला जाए, लेकिन दो दिन के बाद ऊब जाएगा।
अभी यहां बीस-पच्चीस मित्र मेरे साथ कश्मीर गए। वे बंबई से आगे कश्मीर के लिए, पहलगाम में मेरे साथ थे। पहलगाम में जो रसोइया मेरा खाना बनाता था, वह रोज मुझसे कहता कि पीर बाबा मुझे किसी तरह बंबई पहुंचा दें। मैंने कहाः तू क्या पागल है? यह बंबई के लोग मेरे साथ यहां आए हुए हैं पहलगाम। तू धन्यभागी है, तू पहलगाम में ही मजे में रह। उसने कहाः बिल्कुल मजा नहीं आता है, बल्कि कई बार ऐसा लगता है कि यहां लोग क्या देखने आते हैं। यहा कुछ भी तो नहीं है, मुझे बंबई पहुंचा दो। मैं मानता हूं कि उसे बंबई मिलनी चाहिए। क्यों? क्योंकि एक तो बड़ा फायदा यह होगा कि तब वह पहलगाम कभी-कभी देखने में आनंद उठा सकेगा।
मनुष्यता आगे जाती है। पीछे कभी-कभी दिन दो दिन के लिए हाली डे मनाया
जा सकता है। वह सुखद है, लेकिन पीछे जाया नहीं जा सकता है। हां, किसी दिन मौज में आ जाए, राजघाट पर बैठ कर चर्खा चलाएं, जैसा नेतागण चलाते हैं, वह ठीक है। लेकिन अगर कोई कहता हो कि चरखे की इंडस्ट्री का सेंटर बना लें, तो गलत बात है। कोई कहता हो, चरखा ही चलाओ तब खतरा है। हां, वैसे कभी-कभी फोटो उतरवाने के लिए चर्खा चलाना काफी सुखद है, अच्छी हाबी है और बढ़िया हाबी है, सस्ती हाबी है और फायदा ज्यादा लाती है। लेकिन पीछे लौटना असंभव है। न कोई भारतीय संस्कृति, न कोई मुसलमान संस्कृति, न कोई ईसाई संस्कृति--कोई संस्कृति पीछे लौट कर मनुष्य को सुख नहीं दे सकती है। आगे और आगे और जहां आगे है--वहां न हिंदू बचेगा, न ईसाई बचेगा, न मुसलमान बचेगा। वहां मनुष्य बचेगा। भविष्य मनुष्य का है और इस भविष्य को लाने के लिए कितनी सृजनात्मकता चाहिए--उसका हम विचार करें! कितनी संपत्ति पैदा करें, कितना स्वस्थ आदमी पैदा करें, कितना शरीर बलशाली हो, कितना सुख जन्मा सकें कि उस सुख से संगीत आए--उस सुख से आत्मा की तलाश भी आए! उस सुख से हम किसी दिन प्रभु के मंदिर पर भी खड़े हो सकें!

समाजवाद से सावधान
चौथा प्रवचन

कोरा शब्दः लोकतांत्रिक समाजवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछली चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि आप समाजवाद या साम्यवाद की जो आलोचना कर रहे हैं उसमें डेमोक्रेटिक सोशलिज्म (लोकतांत्रिक समाजवाद) के संबंध में शायद आपने विचार नहीं किया।
डेमोक्रेटिक सोशलिज्म या लोकतांत्रिक समाजवाद आत्मविरोधी शब्दों से निर्मित हुआ है, जैसे कोई कहे वंध्या-पुत्र। बांझ स्त्री का बेटा, अगर कोई कहे तो जैसी गलती होगी, वैसी ही यह गलती है। अगर बच्चा है तो स्त्री बांझ न रही होगी, अगर स्त्री बांझ है तो बच्चा नहीं हो सकता है। इसलिए वंध्या- पुत्र शब्द तो बनता है, सत्य नहीं होता। डेमोक्रेटिक सोशलिज्म जैसी कोई चीज नहीं है, लोकतांत्रिक समाजवाद जैसी कोई चीज नहीं है, शब्द भर है; क्योंकि समाजवाद लाने में ही लोकशाही की हत्या करनी पड़ती है। लोकशाही की बिना हत्या के तथाकथित समाजवाद नहीं लाया जा सकता। इस बात का फर्क समझ लेना उचित होगा कि लोकशाही की हत्या क्यों करनी पड़ती है।
डेमोक्रेसी या लोकशाही का पहला सिद्धांत यह है कि प्रत्येक व्यक्ति
को जीने, कमाने, खाने, अर्जित करने, इकट्ठा करने की स्वतंत्रता रहे। लोकशाही का बुनियादी आधार यह है कि किसी व्यक्ति के साथ अन्याय न हो पाए और लोकशाही का यह भी बुनियादी आधार है कि बहुमत अल्पमत पर अन्याय न कर सके। अगर एक गांव में सौ मुसलमान हों और दस हिंदू हों और वे दस हिंदुओं की हत्या करना चाहें और कहें कि हम लोकशाही ढंग से हत्या कर रहे हैं क्योंकि सौ लोग कहते हैं कि हत्या करो और दस लोक कहते हैं कि मत करो--ज्यादा लोग हत्या करने के पक्ष में हैं, इसलिए यह हत्या जो है एक डेमोक्रेटिक है, तो हम कहेंगे, गलत है यह बात। लोकशाही का मतलब ही यह है कि बहुमत भी अल्पमत पर अन्याय न कर पाए। पूंजीवाद या पूंजीपति अल्पमत है।
समाजवाद जिस बहुमत की बात कर रहा है और जिस बहुमत की बात लेकर चलता है,
वह अल्पमत को नष्ट करने के लिए लोकशाही का उपयोग करे तो लोकशाही का बुनियादी आधार गिर जाता है। और आज एक अल्पमत है, कल दूसरा अल्पमत है। आज कुछ लोग कहते हैं संपत्ति बंटनी चाहिए, किसी के पास ज्यादा, किसी के पास कम न हो, क्योंकि संपत्ति ने ईर्ष्या को जन्म दिया है। लेकिन पूछना जरूरी यह है कि जिन लोगों ने संपत्ति पैदा नहीं की, जिन लोगों ने संपत्ति के उत्पादन में और सृजन में कोई हाथ नहीं बंटाया, जो चुपचाप खड़े देखते रहे, लेकिन अर्जित हो जाने के बाद संपत्ति की मांग और बंटवारे की बात जरूर कर रहे हैं--क्या यह अन्यायपूर्ण नहीं है?
यह बड़े मजे की बात है कि जब भी कोई नया आविष्कार हुआ, जिससे दुनिया में संपत्ति आई, तो उस आविष्कार को बेचना भी मुश्किल हुआ। आविष्कारक हमेशा पागल मालूम पड़े। मनुष्य-जाति का बड़ा हिस्सा, बहुमत सदा ही रूढ़िवादी रहा है। विकास किया है इक्के-दुक्के लोगों ने। लेकिन अंत में भागीदार सब हो जाते हैं। मैंने सुना है, एक बहुत बड़े आविष्कार को लेकर एक वैज्ञानिक कई लोगों के पास गया। वह पचास रुपये में भी बेचने को राजी था, लेकिन कोई लेने को राजी नहीं था; क्योंकि बात पागलपन की मालूम पड़ती थी। कार की पहली डिजाइन भी पागलपन था, कोई लेने को तैयार नहीं था। जिस आदमी ने उस डिजाइन को लेने की हिम्मत जुटाई और हिम्मत दिखा कर संपत्ति के उत्पादन का एक नया द्वार खोला और वह आदमी जब संपत्ति पैदा कर लेगा, तो वे जो चुपचाप देख रहे थे कि यह डिजाइन पागलपन की है, यह संभावना गलत है--जब संपत्ति अर्जित हो जाएगी, तब वे कहेंगे कि हम भी इसमें भागीदार हैं, क्योंकि संपत्ति सबकी है।
संपत्ति बहुत थोड़े से लोगों ने पैदा की है और उन थोड़े से लोगों ने जब पैदा कर ली है तो जिन्होंने पैदा नहीं की है, वे मालकियत के लिए जरूर दावेदार हैं। लोकशाही का मतलब यह है कि जिसने पैदा किया है वह उसका मालिक

है। अगर वह बांटता है तो उसकी खुशी है, लेकिन मांगने वाले का हक नहीं हो सकता। अगर इसे मांगले वाले का अधिकार बताया जाता है तो यह बात कहां रुकेगी, कहना कठिन है। संपत्ति भी प्रतिभा से पैदा हुई है। आज हम संपत्तिशाली की प्रतिभा से पीड़ित हैं। हम कहते हैं कि संपत्ति बांट दो। कल हम कहेंगे कि कुछ लोगों के पास सुंदर स्त्रियां हैं, कुछ लोगों के पास कुरूप स्त्रियां हैं, यह अन्याय नहीं सहा जा सकता, यह असमानता नहीं देखी जा सकती। सुंदर स्त्रियों पर सबका समान अधिकार होना चाहिए। गलती नहीं होगी, तर्क वही है, तर्क में कोई भेट नहीं है। परसों हम कहेंगे, कुछ लोग प्रतिभाशाली हों, बुद्धिमान हों और कुछ लोग मूढ़ और अज्ञानी हों, यह बरदाश्त के बाहर है। असमानता नहीं सही जाती। बुद्धि का ठीक-ठीक वितरण होना चाहिए। तर्क वही है, लेकिन तर्क बिल्कुल एंटी-डेमोक्रेटिक है। एक-एक आदमी अलग है। एक-एक आदमी की अलग-अलग क्षमता है। हम आदमी की सृजनशीलता, क्षमता और प्रतिभा अलग है और उसी के अनुसार वह संबंधित वस्तुएं बनाएगा, जिनकी मालकियत भी उसकी ही होगी। अगर वह बांटता है, तो यह उसकी खुशी है; लेकिन मांगने का हक अन्याय है। समाजवाद बहुत से अन्यायों की स्वीकृति देता है, क्योंकि अन्याय के लिए बहुमत को तैयार किया जा सकता है। बहुमत के तैयार होने से अन्याय न्याय नहीं हो जाता और न असत्य सत्य हो जाते हैं। व्यक्तिगत संपत्ति व्यक्ति का मौलिक अधिकार है और लोकशाही उस अधिकार को स्वीकार करती है और जब कोई कहता है, "लोकशाही वाला समाजवाद" तो झूठी बात कहता है; क्योंकि लोकशाही की बुनियादी बात उसने तोड़नी शुरु कर दी है। दूसरी मजे की बात है कि समाजवाद जिन मूल्यों पर खड़ा हुआ है, वह मूल्यों की सिर्फ बात करनाहै, उन्हें ला नहीं सकता। विषय के स्पष्टीकरण के लिए थोड़े से मूल्यों की चर्चा कर लेना उपयोगी होगा।
स्वतंत्रता शायद मनुष्य के जीवन में सर्वाधिक मूल्यवान तथ्य है, संभवतः उससे बड़ा कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि स्वतंत्रता पहला आधार है जिससे व्यक्ति का संपूर्ण विकास हो सके। इसलिए परतंत्रता मनुष्य के जीवन की सबसे बुरी दशा है और स्वतंत्रता सबसे सुंदर और श्रेष्ठ। समाजवाद स्वतंत्रता पर हमला किए बिना स्थापित नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि बहुमत राजी हो अल्पमत की स्वतंत्रता को काट देने के लिए। लेकिन तब भी यह अनुचित है। स्वतंत्रता की हत्या लोकशाही नहीं हो सकती? लोकशाही का प्राण या आत्मा है, विचार की स्वतंत्रता। समाजवाद विचार की स्वतंत्रता बरदाश्त नहीं कर पाता, क्योंकि विचार की स्वतंत्रता में पूंजीवाद के समर्थन की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है। वह उसे कठिन मालूम होने लगता है, वह उसे आमूल तोड़ देना चाहता है। व्यक्ति की संपत्ति और व्यक्ति के विचार की स्वतंत्रता की हत्या करने के बाद भी अगर समाजवाद लोकतांत्रिक हो सकता है, तो वह बहुत आश्चर्य है, वह कैसे लोकतांत्रिक हो सकता है?
लोकतांत्रिक समाजवाद झूठा शब्द है। असल में लोकतंत्र "शब्द" का आदर है। समाजवाद उस आदर को भी छोड़ना नहीं चाहता। रूस भी लोकतांत्रिक है, चीन भी। सब लोकतांत्रिक हैं। शब्दों के साथ आदमी बड़ा खिलवाड़ करता है। वह शैतान के ऊपर भी भगवान का लेबल लगा सकता है। रोके कौन, रोकना बहुत कठिन है। साफ समझ लेना चाहिए कि डेमोक्रेसी पूंजीवाद का मूल्य है, समाजवाद का मूल्य नहीं है और डेमोक्रेसी बचेगी तो पूंजीवाद के साथ बचेगी। समाजवाद के साथ लोकतंत्र नहीं बच सकता। लोकतंत्र पूंजीवादी जीवन-व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा है। वह पूंजीवाद के साथ बचेगा। ऐसे ही और भी मूल्य हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़ते, हमारे खयाल में नहीं आते, लेकिन उन सार मूल्यों की हत्या बड़ी सुविधा से की जा सकती है। उनकी हत्या की जा रही है। व्यक्ति का अपना पृथक चरम मूल्य (अल्टीमेट वैल्यू) है, लेकिन समाजवाद व्यक्ति को नहीं, समाज को, भीड़ को मूल्य देना चाहता है। वह मूल्य देना चाहता है कि मूल्य है समाज का और समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान स्वीकार योग्य है। हमेशा से व्यक्ति का बलिदान होता रहा है बड़े-बड़े सिद्धांतों, बड़े-बड़े नामों के आधार पर--कभी राष्ट्र के लिए, कभी धर्म के लिए, कभी कुरान के लिए, कभी गीता के लिए--न मालूम किन-किन बातों के लिए आदमी का बलिदान होता रहा। लेकिन आदमी ऐसा प्राणी है जो इतिहास से कुछ भी नहीं सीखता। पुराने शब्द हट जाते हैं, तो वह नई बलिवेदियां बना लेता है और फिर उन पर व्यक्ति को काटना

शुरू कर देता है। समाजवाद नई बलिवेदी है अगर मनुष्य के इतिहास से कोई भी एक शिक्षा लेनी हो तो वह एक शिक्षा लेनी जैसी है और वह यह है कि व्यक्ति को किसी के लिए बलिदान नहीं किया जा सकता है। बड़े से बड़ा राष्ट्र भी एक व्यक्ति को बलिदान करने का हकदार नहीं है और बड़े से बड़ा सिद्धांत भी एक व्यक्ति को बलिदान करने का हकदार नहीं है; क्योंकि व्यक्ति जीवंत चेतना है और इस जीवंत चेतना की किसी भी व्यवस्था, किसी भी संस्था और किसी भी संगठन के लिए बलिदान करना उचित नहीं है। लेकिन हम आदी हैं व्यक्ति की हत्या करने के और अब भी हम नये उपाय निकाले जा रहे हैं कि व्यक्ति को किस मंदिर की वेदी पर चढ़ा दें। नई वेदी समाजवाद की है।
समाजवाद लोकशाही नहीं है। समाजवाद अगर हम बलपूर्वक लाते हैं, लाने की चेष्टा करते हैं, तब तो वह लोकशाही हो ही नहीं सकती। एक ही अर्थ में समाजवाद किसी दिन जीवन में अनायास, सहज अपने आप आए, तो जीवन की स्वतंत्रता की हत्या किए बिना आ सकता है, अन्यथा संभव नहीं है।

आज मेरे एक मित्र ने मुझे सूचना दी कि किसी अखबार में उन्होंने पढ़ा कि पैसिफिक महासागर में एक छोटा सा द्वीप है--उस द्वीप की आबादी ज्यादा नहीं है। कुछ ही सौ लोग वहां हैं। लेकिन उस द्वीप के पास फासफोरस की खदानें हैं और इतनी संपत्ति उन खदानों से पैदा हो जाती है कि एक-एक व्यक्ति को करीब आठ हजार रुपये उससे उपलब्ध हो जाते हैं। उस छोटे से द्वीप पर कोई गरीब नहीं है, कोई अमीर नहीं है, क्योंकि लोग कम हैं और संपत्ति ज्यादा है। वह द्वीप शायद पृथ्वी पर अभी पहला समाजवादी है। लेकिन वह समाजवादी है, ऐसा उसे पता भी नहीं है। समाजवाद के पैदा होने की भी कोई जरूरत नहीं है। संपत्ति इतनी ज्यादा है और लोग इतने कम हैं। उन्होंने मुझे खबर दी कि वहां अगर कोई मेहमान होता है किसी के घर में और इतना कह देता है कि यह रेडियो बहुत सुंदर है तो उस घर के लोग तत्काल उसे रेडियो दे देते हैं, क्योंकि वह कह देते हैं कि जिसे पसंद आ गई चीज, उसकी हो गई। संपत्ति है बहुत और संपत्ति की पकड़ हो गई है क्षीण। किसी दिन इस पृथ्वी पर समाजवाद आ सकता है--आना चाहिए--आएगा, अगर समाजवादियों ने जल्दी नहीं की। अगर समाजवादियों ने जल्दी की तो यह हो सकता है कि कभी भी न आ सके। सदा के लिए अवरुद्ध हो जाए। संपत्ति ज्यादा हो और व्यक्ति कम, इसकी व्यवस्था हम जिस दिन कर लेंगे, उस दिन लोकतंत्र की हत्या किए बिना समाजवाद आ सकता है। लेकिन तब उसका हमें पता भी नहीं चलेगा कि वह कब आया। वह चुपचाप आ जाएगा, जैसे जिंदगी में सब महत्वपूर्ण चीजें आती हैं।
एक बात और ध्यान देने जैसी है। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए, क्योंकि... कई मित्रों ने पूछा है कि आप कहते हैं कि श्रम का कोई उपयोग ही नहीं है पूंजी के उत्पादन में... ?
ऐसा मैंने नहीं कहा कि श्रम का उपयोग नहीं। मैंने कहा यह कि श्रम आज नहीं कल, गैर-जरूरी तत्व होता चला जाएगा। रोज होता चला गया। श्रम ने पूंजी के अर्जन मे साथ दिया है, लेकिन सृजन का मूल केंद वह नहीं है। सृजन का मूल केंद्र मनुष्य का मस्तिष्क है, मनुष्य की बुद्धि है और मनुष्य की प्रतिभा है जिसने सृजन के नये-नये आयाम खोजे। और यह भी ध्यान रहे कि श्रम जो है, वह बहुत जल्दी मर जाने वाली चीज है। अगर मैं आज दिन भर काम करूं तो आज दिन भर काम न करने से मेरे पास श्रम बचेगा नहीं कि मैं उसे तिजोरी में रख लूं और कल उसका उपयोग कर लूं। अगर मैंने आज दिन भर काम नहीं किया तो आज मैं जो काम कर सकता था, वह मैं कभी न कर सकूंगा, क्योंकि श्रम को बचाया नहीं जा सकता। श्रम रोज खो जाता है। ऐसा नहीं कि एक मजदूर काम करे जिंदगी भर तो उसका शोषण नहीं होगा, वह तो मर ही जाएगा। क्योंकि श्रम बचाया नहीं जा सकता। वह यह नहीं कह सकता कि मैंने अपने श्रम को तिजोरी में बंद कर रखा है। मैंने बचा लिया है।
पूंजीवाद ने पहली दफा श्रम को बचाने की व्यवस्था सोची। वह जो पैरी- सेवल कमोडिटी थी, उसको सुरक्षा योग्य बनाया। धन की ईजाद से श्रम बचने योग्य हुआ। आज मैं श्रम करता हूं और पांच रुपये तिजोरी में बंद कर लेता हूं, पांच रुपये की शक्ल में मेरा श्रम स्थायी हुआ, बचा। अगर पांच रुपये की शक्ल में न मिले तो श्रम गया। ऐसा नहीं है कि मेरे पास श्रम होता, लेकिन

मजा यह ह कि मैं कहूंगा कि मैंने दस रुपये का श्रम किया और मुझे सिर्फ पांच रुपये मिले, जब कि अगर मैं नहीं करता तो एक पैसे का भी श्रम नहीं होता। यह जो पांच रुपये मुझे मिले हैं, निश्चित ही किसी दिन मुझे दस रुपये मिलने ही चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पूंजी-उत्पादन की जो व्यवस्था है, उसको तोड़ कर रुपये मिल जाएंगे। इस पूंजी-उत्पादन व्यवस्था को और विकासमान करना होगा। पूंजीवाद जैसा आज है वैसा पर्याप्त नहीं है। आप ऐसा मत सोच लेना, जैसा कई मित्रों ने का है कि जो पूंजीवाद आज है, आप उसका समर्थन कर रहे हैं।
नहीं, जो पूंजीवाद आज है, उसमें बहुत परिष्कार की गुंजाइश एवं अनिवार्यता है। आज जो पूंजीवाद है, वह बिल्कुल प्राथमिक है--वह पूंजीवाद का क ख ग है। अभी उसे बहुत विकसित होना है, लेकिन समाजवादी शोरगुल उसे विकसित नहीं होने देगा। यह हो सकता है कि कल पांच रुपये की जगह दस रुपये भी श्रमिक को दिए जा सकें और यह भी हो सकता है कल दस रुपये के श्रम की जगह बीस रुपये दिए जा सकें और यह भी हो सकता है कि जो आदमी श्रम न करे, उसे भी दिया जा सके और अंततः ठीक से हम टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन से गुजर जाएं तो यह भी हो सकता है कि जो आदमी श्रम की मां करे उसे कम पैसे मिलें, और जो आदमी आराम करने के लिए राजी हो जाए उसे ज्यादा पैसे मिल जाएं। यह भी हो सकता है। यह इसलिए हो सकता है कि श्रम की मांग बढ़ी, और बहुत सी चीजों से जुड़ी है। अगर कल आपके गांवों में सारे स्वचालित यंत्र लगा दिए जाएं तो हजारों-लाखों लोग बेकार हो जाएंगे, लेकिन स्वचालित यंत्र जो संपत्ति पैदा करेंगे, उसका करिएगा क्या? इन बेकार लोगों को ही वह देनी पड़ेगी। उनको बेकारी का मुआवजा देना पड़ेगा। लेकिन कोई आदमी कह सकता है कि मैं चौबीस घंटे बेकार नहीं रह सकता। मैं पागल हो जाऊंगा। मुझे दो घंटे काम चाहिए तो इस आदमी को कम पैसा देना पड़ेगा, क्योंकि यह दोनों बातें मांगता है। पैसा भी मांगता है और काम भी मांगता है। जो बेकाम होने के लिए बिल्कुल तैयार हों--जो कहते हैं हम सिर्फ पैसे ही मां लेते हैं, हम काम नहीं मांगते, उन्हें ज्यादा भी मिल सकता है। वह पचास साल के भीतर संभव हो सकता है--अगर उत्पादन की व्यवस्था को परिष्कृत किया जाए और उसे जगह-जगह तोड़ने का उपाय न किया जाए। तोड़ने के उपाय बड़े मजेदार है और बड़ी तरकीब से भरे हैं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ते हैं। एक तरफ देश के नेता चिल्लाते हैं कि देश गरीब है। संपत्ति उत्पादित होनी चाहिए। दूसरी तरफ जो संपत्ति का उत्पादन करे, उस पर जितनी ज्यादा संपत्ति उत्पादन करे, उतना ज्यादा कर वे लगाते चले जाते हैं। यह बिल्कुल मूढ़तापूर्ण बात है। अगर संपत्ति ज्यादा चाहते हैं तो जो आदमी एक लाख पैदा करे, उस पर ज्यादा टैक्स। जो दो लाख पैदा करे उस पर कम, जो तीन लाख पैदा करे, उस पर और कम। दस लाख करे, उस पर बिल्कुल नहीं। जो करोड़ करे, उसको उलटा सरकार टैक्स दे तो संपत्ति ज्यादा पैदा हो सकती है। संपत्ति के ज्यादा पैदा होने का सीधा सूत्र यह है कि लोगों के इंसेंटिव को जगाओ। इंसेंटिव को मारते हैं आप। आप कहते हैं, लाख पैदा किया। आपने दो लाख यदि पैदा किया तो नब्बे हजार टैक्स हो जाएगा। तीन लाख किया तो और टैक्स हो जाएगा, चार लाख किया तो जो कमाया, वह टैक्स में जाएगा और टैक्स के भरने के इंतजाम की जो दौड़-धूप है, वह अलग है; तो आदमी सोचता है, कमाने की जरूरत ही क्या है। जो कमा सकते हैं, उनको आप रोक रहे हैं और जो नहीं कमा सकते हैं, वह जो बड़ा वृहत समाज है हमारा, जो लिथार्जी से भरा है, जो कुछ नहीं कमा सकता है, उसके आप गीत गा रहे हैं। मुल्क को मार डालने की तरकीब है। ये गीत अच्छे लग सकते हैं, लेकिन यह महंगे और खतरनाक हैं।
मनुष्य समाज का बहुत बड़ा हिस्सा बिल्कुल ही सृजनात्मक नहीं है। मनुष्य-समाज का बहुत बड़ा हिस्सा रोटी मिल जाए, भोजन मिल जाए और बच्चा पैदा करने की सुविधा मिल जाए तो तृप्त है। उसे और कुछ नहीं करना है। मनुष्य-जाति के बड़े हिस्से ने खाना खाने, बच्चा पैदा करने के अतिरिक्त कोई बड़ा काम नहीं किया है। मनुष्य-जाति के बहुत थोड़े से हिस्से ने सृजन के फूल खिलाए हैं। चाहे वह दिशा कोई भी हो, कविता हो, चित्र हो, धन हो, विज्ञान हो, धर्म हो, हर क्षेत्र में बहुत थोड़े से मनुष्यों ने सृजन के शिखर पाए हैं। इनको रोकने की चेष्टा चल रही है, यह बहुत एब्सर्ड लॉजिक है। कहते तो यह हैं कि संपत्ति चाहिए देश को और प्रशंसा उसकी करते हैं जिसके पास संपत्ति

नहीं है। जिसके पास संपत्ति नहीं है, उसके पास क्यों नहीं है? करोड़ों साल से वह भी पृथ्वी पर है। उसके भी पुरखे जमीन पर थे। उसके पास संपत्ति क्यों नहीं है? कभी इस पर सोचा है? उसने संपत्ति पैदा नहीं की, बच्चे पैदा किए। वह दरिद्र होता चला गया, उसकी दरिद्रता बढ़ती चली गई, लेकिन बहुत आश्चर्य है कि जिन्होंने संपत्ति पैदा की, वे आज अपराधी हैं। उनको आज समाज की सूली पर लटकना पड़ेगा। उनका भी एक ही अपराध है कि तुमने भी बच्चे पैदा क्यों नहीं किए? तुम भी चुपचाप बिना धन सृजन किए क्यों न बैठे रहे? तुम्हारा बहुत बड़ा पाप है कि तुमने धन पैदा किया। अब वह जिन्होंने नहीं पैदा किया है, वे बदला लेंगे और कहेंगे कि हम तुम्हारी गर्दन दबाएंगे। तुमने हमें चूस लिया, यह बड़े आश्चर्य की बात है। यह धन चूस कर पैदा नहीं हुआ है। यह धन कुछ लोगों ने बड़ी प्रतिभा और बड़े श्रम से पैदा किया है। इसमें बड़ी बुद्धि और बड़े नये आयामों की खोज है, लेकिन वह हमारे खयाल में नहीं है। इनको हम मिटाने पर तुले हैं। इनको हम काटेंगे, हमारा बस यही अंधा तर्क है।
अभी मैं एक परिवार-नियोजन केंद्र को देखने गया। सारा शासन चिल्ला रहा है। सारा देश कोशिश में लगा है कि परिवार-नियोजन हो, लेकिन हमारे तरीके बड़े अजीब है। अगर परिवार-नियोजन करना है तो फिर हमें सोचना चाहिए, उस पूरे संदर्भ में। जैसे मैंने कहा कि अगर संपत्ति उत्पादित करनी है तो जितनी ज्यादा जो संपत्ति पैदा करें, वह पुरस्कृत होना चाहिए। अभी वह दंडित होता है। जब दंडित होगा तो संपत्ति किसलिए पैदा करेगा और जो पैदा नहीं करने वाला है, वह तो करेगा नहीं। जो कर सकता था, वह रुकेगा। मुल्क गरीब होगा रोज-रोज। मुल्क अमीर नहीं हो सकता।
मैं गया उस परिवार-नियोजन केंद्र में। मैंने उस अधिकारी से पूछा कि तुम्हें पता है कि सरकार बैचलर पर कम टैक्स लगाती है या ज्यादा? शादीशुदा पर कम टैक्स लगता है कि ज्यादा? जिसके दो बच्चे हैं, उस पर कम टैक्स लगता है कि ज्यादा? उसने कहा कि इससे परिवार-नियोजन का क्या संबंध है? मैंने कहा, तब तो इसका मतलब हुआ परिवार-नियोजन से बुद्धि का ही कोई संबंध नहीं है। अगर बच्चे बढ़ते हैं किसी घर में तो टैक्स बढ़ला चाहिए, तो बच्चे रुकेंगे। बच्चे बढ़ते हैं, तो टैक्स कम होता है और सरकार कहती है कि हमको बच्चे कम पैदा करने हैं। बच्चे अगर बढ़ते हैं तो टैक्स बढ़ना चाहिए। जिसके घर में तीन बच्चे हों, उस पर कम टैक्स, जिसके चार हों, उस पर और ज्यादा, पांच हों तो और ज्यादा। छठवां हो तो उसकी फीस कई गुनी होनी चाहिए स्कूल में। उसको दवाई महंगी मिलनी चाहिए, क्योंकि जितने बच्चे ज्यादा होंगे, उतने उस पर टैक्स बढ़ने चाहिए तो वह डरेगा और बच्चे रोकेगा। लेकिन जितने बच्चे बढ़ेंगे टैक्स कम हो जाएगा। गैर-शादीशुदा आदमी पर टैक्स ज्यादा है। शादीशुदा होने पर कम हो जाएगा। अजीब बेवकूफी है। गैर-शादीशुदा आदमी पर टैक्स बिल्कुल मत लगाओ। कम करो, ताकि लोग ज्यादा देर तक शादी न करें और शादीशुदा पर जोर से टैक्स लगाओ, ताकि शादी महंगी पड़ने लगे, लोग देर से करें, कम करें। हर बच्चे के साथ टैक्स को बढ़ाओ। एक तरफ चिल्लाओ कि बच्चे कम, दूसरी तरफ जो बच्चे ज्यादा पैदा करे, उस पर टैक्स कम करो, तो इसका अर्थ क्या हुआ?
संपत्ति के मामले में भी यही हो रहा है। जीवन के बहुत पहलुओं पर यही
हो रहा है कि हमारे सामने कोई साफ उद्देश्य न होने से कुछ भी हम किए जा रहे हैं। देश गरीब है तो संपत्ति पैदा करने की सुविधा जुटाओ। देश गरीब है तो संपत्ति को सारी दुनिया से निमंत्रित करो, लेकिन इस मुल्क का खयाल है कि दूसरे मुल्क से लोग आ जाएंगे तो हमें चूस लेंगे।
मैंने आपसे कहा कि श्रम अगर उपयोग में न आए, तो बिना चूसे ही खत्म हो जाता है। अगर सारी दुनिया की संपत्ति इस मुल्क में निमंत्रित हो तो इस मुल्क का जो बहुत सा श्रम रोज व्यर्थ मर रहा है, वह सारा का सारा पूंजी में परिवर्तित हो जाए। लेकिन हमारा खयाल यह है कि अगर दूसरे मुल्क की पूंजी हिंदुस्तान में आई तो हमारा शोषण हो जाएगा। शोषण नहीं हो जाएगा, वरन हमारा जो श्रम रोज गंगा के पानी जैसा समुद्र में गिरता जा रहा है, उसका उपयोग कर लो तो ठीक है, अन्यथा वह नष्ट हो जाएगा। नर्मदा का पानी भी रोज गिरा जा रहा है समुद्र में। उपयोग कर लो तो ठीक, अन्यथा वह गिर जाएगा।

ऐसे ही मनुष्य में जो श्रम की शक्ति पैदा होती है, वह रोज ही तिरोहित
हो जाती है अनंत में। उपयोग कर लो, उसे ट्रांसफार्म करो, संपत्ति बना लो, वह बच जाएगी। लेकिन हम बहुत अजीब लोग हैं, हम कहते हैं कि दस रुपये का श्रम अगर गंगा में चला जाए तो कोई हर्जा नहीं, लेकिन हम पांच रुपये पर राजी न होंगे। कहीं कोई हमारा पांच रुपये का शोषण न कर ले। जैसे कि पांच रुपये हमारे पास थे और किसी ने छीन लिए। कोई छीन नहीं रहा है। शोषण की पूरी की पूरी धारणा बड़ी नासमझी से भरी हुई है।
पूंजीवाद श्रम को संपत्ति में बदलने की प्रक्रिया है और अगर पूंजीवाद
को ठीक से विकास का मौका दिया जाए तो वह सारे श्रम को संपत्ति में बदलने का मार्ग खोज ले सकता है। लेकिन समाजवादी कहते हैं कि नहीं, हम राज्य के हाथ में यह सब देंगे और मजे की बात यह है कि राजनीतिज्ञ से ज्यादा अयोग्य वर्ग आज पृथ्वी पर कोई भी नहीं है और कभी भी नहीं था। इसका कारण है। इसका कारण यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योग्यता का मूल्य है।
राजनीति के क्षेत्र में योग्यता का कोई भी मूल्य नहीं है। जो आदमी किसी भी बाजार में जूता बेचने को दुकान पर भी न रखा जा सके, वह शिक्षामंत्री हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती है, क्योंकि शिक्षामंत्री के होने से, शिक्षा से योग्यता का कोई संबंध नहीं है। राजनीति एक मात्र अयोग्यों के लिए द्वार है। जिनके पास कोई योग्यता नहीं, वे राजनीति के योग्य हो सकते हैं, क्योंकि राजनीति किसी तरह के विशेष ज्ञान, किसी तरह की विशेषता का कोई आग्रह नहीं करती। इसलिए राजनीति अदभुत गोरख-धंधा है। उसमें कोई भी आदमी जो सिर्फ एक कला जानता है कि दस-बीस आदमियों को अपने पीछे इकट्ठा कर सके, शोरगुल मचा सके, वह आदमी राजनीति में योग्य हो जाता है। लेकिन फिर वह करेगा क्या? वह शिक्षामंत्री बनेगा और युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर और शिक्षाशास्त्री उसके आगे-पीछे चक्कर काटेंगे और वह आदमी अंगूठे से दस्तखत करेगा और शिक्षा को संचालित करेगा। यह समझ के बिल्कुल बाहर है। वह आदमी जिसको कोई पता नहीं है मेडिकल साइंस का, वह स्वास्थ-मंत्री हो जाएगा और स्वास्थ पर मुल्क का मार्गदर्शन करेगा, मुल्क के स्वास्थ को ठीक करने का विचार करेगा। राजनीति अयोग्य व्यक्ति के लिए गति है, लेकिन वह धन को भी अपने हाथ में लेना चाहती है। वह कहती है कि व्यवसाय, सारा धन, सारे उत्पादन भी राजनीतिज्ञों के हाथ में चले जाने चाहिए। वह भी कहीं से संचालित होना चाहिए। मुल्क को किसी भी तरह दिवालिया करने की उसने कसम खा रखी है--दिवालिया करके ही रहेंगे। मुल्क सब तरह से दिवालिया हो जाए, तब तक हम रुकने वाले नहीं हैं।
मेरी अपनी दृष्टि और ही है। मेरी दृष्टि यह है कि राजनीतिज्ञ को, तभी
इस दुनिया में मनुष्य को खतरे में ले जाने से रोका जा सकता है, जब कि राजनीतिज्ञ को सीधा ही शासन का मालिक न होने दिया जाए। इसलिए मेरी दृष्टि तो यही है कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि पार्लियामेंट बनाएं, लेकिन पार्लियामेंट में से मंत्रिमंडल न बने। पार्लियामेंट में जो पार्टी ज्यादा बहुमत में हो, उस बहुमत की पार्टी को हक हो कि एक शिक्षाशास्त्री को खोजे पूरे मुल्क में और शिक्षामंत्री बनाए। खोजे एक चिकित्सक को और स्वास्थ्य मंत्री बनाए। लेकिन जनता का प्रतिनिधी स्वास्थ मंत्री और शिक्षामंत्री नहीं होना चाहिए। यह मॉबोक्रेसी है, डेमोक्रेसी नहीं है। यह भीड़-तंत्र हुआ, लोकतंत्र नहीं हुआ।
जनता अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजे। जिन लोगों की ज्यादा संख्या हो पार्लियामेंट में, वे लोग अपने आदमी खोजें मुल्क में; लेकिन जिस पद के लिए खोजें, उस पद की योग्यता पूरी होनी चाहिए तब मॉबोक्रेसी की जगह मेरिटोक्रेसी का इंतजाम आ सकता है। गणतंत्र जब तक गुणतंत्र (मेरिटोक्रेसी) से नहीं जुड़ता, तब तक गणतंत्र निपट नासमझी की कहानी है। तब तक गणतंत्र मनुष्य को नीचे ही ले जाएगा, ऊपर नहीं ले जा सकता। जनता का प्रतिनिध बिल्कुल ठीक है--चुना जा सकता है। जनता का हक है, अपना प्रतिनिधि चुनने का, लेकिन अपने प्रतिनिधि को शिक्षामंत्री बनाने का हक जनता को नहीं हो सकता है। हां, जनता का प्रतिनिधि शिक्षा शास्त्रियों को खोजे-- जिनको ठीक समझे, वह जनता का प्रतिनिधि चुनेगा। लेकिन कैबिनेट और मुल्क के शासन का हक विशेषज्ञों के हाथ में होना चाहिए। जब तक एक्सपर्ट के हाथ में,

गुणवान लोगों के हाथ में राज्य नहीं है, तब तक सब तरह के खतरे हैं और आज तो जीवन की प्रत्येक चीज स्पेशलाइज्ड है। आज तो एक छोटी से छोटी चीज के लिए विशेषज्ञ हैं।
आज पुराना जमाना गया कि आप गए वैद्य के पास। उसने आपसे पूछा नहीं और नाड़ी देखी और दवा दे दी। उसने यह भी नहीं पूछा कि पेट में दर्द है, आंख में दर्द है कि पीठ में तकलीफ है। नाड़ी देखी और दवा दे दी। वह स्पेशलाइजेशन के पहले की बात है, जब वैद्य सभी कुछ जानता था। अब हालतें बदल गई हैं। मैंने सुना है कि आज से पचास साल बाद एक गांव में एक औरत, एक डाक्टर के आफिस गई और उसने कहा, मेरी आंख में तकलीफ है। वह डाक्टर उसे भीतर ले गया। फिर उसने पूछाः आपकी किस आंख में तकलीफ है। उसने कहा कि बाईं आंख में दर्द है। उस डाक्टर ने कहाः माफ करिए, मैं दाईं आंख का डाक्टर हूं। बाईं आंख का डाक्टर आगे है। एक आंख भी कितनी बड़ी बात है कि असल में दोनों आंख का डाक्टर भी ज्यादा दिन तक नहीं चलेगा! एक आंख इतनी बड़ी घटना है। इतनी बड़ी जटिलता है, लेकिन जिंदगी का जो सबसे जटिल तंत्र है राज्य, वह अविशेषज्ञों के हाथ में है। वे मुल्क को बर्बाद करते चले जाएंगे और अविशेषज्ञों का मन होता है कि सब पर कब्जा कर लो। धन की भी ताकत मेरे हाथ में हो, उद्योग मेरे हाथ में हों, सब मेरे हाथ में हों। धर्म भी मेरे हाथ में हो, विज्ञान भी मेरे हाथ में हो, लेकिन उसकी चाह को अगर हमने पूरा होने दिया तो खतरा होगा।
इसलिए मैं एक धारणा आपको देना चाहता हूं मेरिटोक्रेसी की, गुणतंत्र की। गुणतंत्र गणतंत्र के माध्यम से काम करने की धारणा है और आज नहीं कल, सारी दुनिया में जहां भी समझ बढ़ गई है, वहां एक्सपर्ट मूल्यवान होता चला जा रहा है। आज नहीं कल, इस बात की बहुत संभावना है कि वह जो विशेषज्ञ हैं, वह जो ज्ञानी है उसके हाथ में सब चला जाए।
मेरे एक मित्र ने खबर भेजी है कि जैसा आज आप कह रहे है कि सिर्फ पूंजीवाद ही जानता है, पूंजी को पैदा करना। ऐसा ही कुछ जमाने पहले ब्राह्मण कहते थे कि ब्राह्मण ही जानता है ज्ञान पैदा करना। अब वे ब्राह्मण कहां हैं? उन्होंने पुछवाया है कि अब ज्ञान कोई भी पैदा कर रहा है--वैसे ही आप जो कहते है, ये पूंजीपति भी चले जाएंगे तो कोई भी पूंजी पैदा करेगा?
उन मित्र से मैं निवेदन करना चाहूंगा कि उन्हें शायद पता नहीं है कि
हम ऐसा नहीं कहते रहे है कि ब्राह्मण ही ज्ञान पैदा कर सकता है। हम ऐसा कहते रहे हैं कि जो ज्ञान पैदा करता है, यह ब्राह्मण है और आज भी ब्राह्मण ही ज्ञान पैदा कर रहा है सारी दुनिया में। आइंस्टीन ब्राह्मण है, बनिया नहीं। और बर्ट्रेंड रसल ब्राह्मण है। मार्क्स भी ब्राह्मण है। ये सब ब्राह्मण हैं। यदि हिंदुस्तान में मार्क्स पैदा होता तो कभी का महर्षि हो जाता। ये सब ब्राह्मण हैं।
ब्राह्मण का मतलब क्या है? कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं होता। जन्म से बांधने की वजह से बड़ी भूल हो गई और अन्याय हो गया। यह धारणा कि मनुष्य चार प्रकार के होते हैं, बड़ी कीमती अंतर्दृष्टि है। भूल तो यहां हो गई कि हमने जन्म से इसे बांध दिया। कोई आदमी जन्म से ब्राह्मण नहीं होता, लेकिन कुछ लोग हैं जिनके लिए जीवन भर ज्ञान की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, धन की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, शक्ति की खोज ही जिनकी आत्मा है। कुछ लोग हैं, श्रम ही जिनकी आत्मा है। यह जो चार की कल्पना थी-- ब्राह्मण की, शूद्र की, वैश्य की, क्षत्रिय की, वह कल्पना जन्म से संबंधित होकर रुग्ण हो गई। धारणा कुछ और थी। धारणा यह थी कि चार टाइप के लोग हैं दुनिया में और वह धारणा अभी भी गलत नहीं हे। और कभी गलत नहीं होगी। वह धारणा सदा रहेगी। कुछ लोग हैं जो धन पैदा कर सकते है, वह कुछ ही लोग हैं। जरूरी नहीं कि धनिक का बेटा धन ही पैदा कर सकता है। इसलिए लिक्विडिटी तो होनी ही चाहिए, लेकिन धन पैदा करने वाली प्रतिभा कुछ लोगों में है, वे ही वणिक हैं, ज्ञान कुछ लोग पैदा कर सकते हैं। अब मार्क्स बीस साल तक ब्रिटिश म्युजियम की लाइब्रेरी में बैठ कर पढ़ता रहा और इतना उसने पढ़ा कैपिटल लिखने के लिए कि जब लाइब्रेरी बंद होती तो चपरासी उसे अक्सर बेहोश हालत में घर पहुंचाता, क्योंकि वह दिन भर पढ़-पढ़ कर बेहोश हो जाता, यह आदमी ब्राह्मण है। असल में

दुनिया में विचार का जन्म बिना ब्राह्मण के होता ही नहीं। कहीं भी दुनिया में जब कोई ज्ञान लाएगा तो वह टाइप ब्राह्मण का होगा। धन कुछ लोग पैदा कर सकते हैं और राजनीति की जो दौड़ है, वह धनिक की दौड़ नहीं है। राजनीति की जो दौड़ है, अगर वह ठीक और शुद्ध हो तो क्षत्रिय की दौड़ है।
वह जो टाइप है शक्ति के लिए, शक्ति की खोज में चलता है, जीवन भर उसकी दौड़ है। दुनिया में शूद्र भी मिट नहीं जाएगा। हां, शूद्र जन्म से कोई भी नहीं होना चाहिए; लेकिन शूद्र का कुल मतलब इतना है कि जो श्रम कर लेता है, खाना खा लेता है, बच्चा पैदा करता है और मर जाता है। बहुत लोग शूद्र हैं। ब्राह्मणों के घर भी शूद्र पैदा होते हैं। वणिकों के घर में भी पैदा होते हैं, क्षत्रियों के घर में भी पैदा होते हैं। शूद्र का मात्र मतलब इतना ही है, इसलिए शूद्र बुरा शब्द नहीं है। उसका कुल मतलब इतना है कि ऐसा आदी, जो खा लेता है, पी लेता है, पैदा कर लेता है, प्रकृति का काम पूरा कर लेता है और एक पशु के तल पर जीकर समाप्त हो जाता है। लेकिन हमारा जो सोचने का ढंग है, वह यह है कि ब्राह्मण जन्म से है। जन्म वाला ब्राह्मण खो गया। जन्म वाला धनी भी नहीं बच सकता। लेकिन जिसमें धन की प्रतिभा है, उसकी स्वतंत्रता तो बचनी चाहिए कि वह धन खोज सके। सेवा जिसे करनी है, श्रम जिसे करना है, वह श्रम कर सके। ज्ञान जिसे खोजना है, वह ज्ञान खोज सके।
समाजवाद सब पर रोक लगाता है। आज रूस में ज्ञान की खोज पर बुनियादी रोक है। सभी तरह का ज्ञान नहीं खोजा जा सकता है। अगर कोई आज रूस में कहे कि मैं ध्यान के संबंध में कुछ खोज कर रहा हूं तो उपाय नहीं है। आज रूस में संन्यासी होने का उपाय नहीं है। संन्यासी की भी अपनी खोज है और कौन कह सकता है कि उसी की खोज अंतिम सिद्ध न होगी? जब सब ज्ञान थक जाए तो पता नहीं उसी की खोज सही हो। आइंस्टीन जैसा खोजी भी जीवन के अंत में यही कहता है कि सब खोज कर मैं उस जगह पर पहुंचा, जहां मैं कह सकता हूं कि जितना खोजा उतना ही पाया हूं कि अज्ञानी हूं। जितना खोजा उतना ही पता चला कि और अनंत खोजने को है। अंत में इतना ही कह सकता हूं कि जीवन एक रहस्य है। और उसका कोई आर-पार नहीं है। यह आदमी संन्यासी हो गया और रहस्य के किनारे पहुंच गया, लेकिन रूस में रहस्य की बात नहीं की जा सकती। ईश्वर वहां वर्जित खोज है। वह खतरनाक बात है। इसका मतलब हुआ कि ब्राह्मण के लिए पेदा होने के उपाय रोके गए। धन भी नहीं खोजा जा सकता।
अभी आज मुझे किसी ने कहा कि संभवतः रूस ने निमंत्रित किया है फोर्ड को
कि वह रूस में मोटर के कारखाने डाले। अमरीका से फोर्ड को बुलाइएगा और अपने मुल्क में जो फोर्ड पैदा होता है, उसकी पचास साल में हत्या कर दी। वह तो रूस में ही पैदा हो सकता था फोर्ड, कोई अमरीका से ही लाने की जरूरत थी? लेकिन आज अमरीका को निमंत्रण देना पड़ेगा फोर्ड बुलाने के लिए। मामला क्या है? क्या रूस के पास वह जो वैश्य था, वह जो बुद्धि थी, जो धन पैदा करती, वह नहीं पैदा हो सकती? वह हो सकती थी, लेकिन उसे पचास साल में रोका गया है। उसको सब तरह से रोका और तोड़ा है। उसको मिटा डाला है। आज वह जंजीर में कसी है। आज उसके फैलने का उपाय नहीं रह गयाहै। समाजवाद इन चारों तरह के व्यक्तियों को स्वतंत्रता नहीं देता। इसलिए मैं मानता हूं कि वह अमानवीय है।
पूंजीवाद एक मानवीय व्यवस्था है जो सब तरह के व्यक्तियों को सब तरह
की दिशाओं में, सब तरह की पूरी स्वतंत्रता देती है। अगर नहीं दे रही है तो कोशिश कर रही है कि वह पूरी दे। अगर कहीं रुकावट है तो उस रुकावट को हटाना चाहिए, लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि क्या जरूरत है बीमारी दूर करने की? बीमार को ही दूर कर दो। वे कहते हैं, क्या फायदा है इलाज करने से। मारो इस मरीज को। पूंजीवाद में खामियां हैं, वे खामियां दूर की जा सकती हैं; लेकिन कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, जो कहते हैं इतनी खामियां हैं, मारो मरीज को। लेकिन उन्हें पता नहीं कि यह मरीज का मरना पूरी मनुष्य-जाति का मरना हो सकता है।
इसी संदर्भ में मैं आपको कहूं। कल मैंने गांधी जी को कुशल बनिया कहा
तो कुछ लोगों को बड़ी तकलीफ हो गई। वे बनिया थे। बनिया इसी हिसाब से, जो मैंने चार वर्ग बताए। तो किसी ने कहा कि आपने बड़ी निंदा का शब्द उपयोग कर दिया। कुछ लोगों का खयाल है कि "बनिया" शब्द निंदा का है। बनिए को भी लगता

है कि बनिया शब्द निंदा का है। कोई शब्द निंदा का नहीं है। बनिया सिर्फ एक फैक्ट है। वणिक एक तथ्य है। वह भी एक तरह का आदमी है और मैं कहता हूं, गांधी ब्राह्मण नहीं हैं और गांधी शूद्र भी नहीं हैं। गांधी का मूल व्यक्तित्व बनिया का है, लेकिन यह तथ्य की बात है। कंडेमनेशन भी नहीं है, लेकिन हम तो इतने सोचने में क्षीण हो गए हैं कि या तो हम प्रशंसा समझते हैं या निंदा समझते हैं। फैक्ट को तो हम समझते ही नहीं कभी कि कोई बात फैक्ट भी हो सकती है। अगर मैं आपसे कह दूं कि फलां आदमी को टी.बी. है तो वह कहेगा कि आप हमको गाली दे रहे हैं। टी.बी. है तो इसमें गाली की क्या बात है? गांधी जी बनिया है, इसलिए मैंने कहा। कोई निंदा नहीं की है। तो उस मित्र ने कहा कि आप और दो-चार उल्लेख दें।
हजार उल्लेख दिए जा सकते हैं, फिर भी एक-दो मैं देना चाहूंगा। महावीर त्यागी ने संस्मरण लिखा है। गांधी जी उनके गांव में आए--रात बड़ी सभा हुई। गांधी जी ने सभा में लोगों से दान मांगे। कोई जो देना चाहे, दे दे। किसी ने रुपये दिए, किसी ने कान के इयर-रिंग दिए, किसी ने पैर की पायल दी, किसी ने चूड़ी दी। गांधी यह सब वही मंच पर डालते गए। लोगों से लेते गए और मंच पर डालते गए और फिर महावीर त्यागी से कह गए कि मैं जाता हूं और तुम सब समेट कर ले आओ। वह सब समेट कर रात बारह बजे पहुंचे। उन्होंने सोचा कि गांधी जी सो भी गए होंगे, लेकिन उन्हें पता नहीं कि कुशल वणिक की बुद्धि क्या चीज है-- सोना पीछे, हिसाब पहले। वह बुद्धि पहले हिसाब करती है। तो सोचा, इतनी रात न जाऊं, लेकिन बारह बजे गया तो देखा कि बूढ़े गांधी जाग रहे हैं और गांधी जी ने कहाः ले आए! जल्दी से खोल कर सब देखा। न केवल देखा, उन्होंने कहाः फिर से जाओ। इसमें एक ही इयर-रिंग है। कोई स्त्री मुझे एक इयर-रिंग नहीं देगी, देगी तो दोनों देगी। इयर-रिंग दो होने चाहिए। महावीर त्यागी एक बजे रात वापस भागे। रोते-धोते वहां पहुचे। गैस जला कर फिर ढूंढा, मिल गया वह आभूषण। वैश्य की नजर बड़ी गहरी होती है। वह लेकर लौटा बेचारा। सोचा, सो गए होंगे गांधी जी, लेकिन नहीं, वे अभी जाग रहे थे। जब इयर-रिंग मिल गया तब कहा कि अब हिसाब ठीक है।
मैं कोई डैरोगेट्ररी बात नहीं कह रहा हूं, यह भी प्रतिभा का एक ढंग है। इसमें कुछ निंदा की बात नहीं है। और यदि हम इस व्यक्तित्व को समझ लेते तो हिंदुस्तान की जिंदगी में बड़ा फर्क पड़ता। क्योंकि बनिए के हाथ में नेतृत्व हो तो खतरा होने वाला ही है। गांधी को काम दूसरे करने पड़े। काम क्षत्रिय का करते थे। भगतसिंह उस काम को ठीक से कर लेता, सुभाष ज्यादा ठीक से कर लेते। लेकिन वह नहीं हो सका और उसका परिणाम हुआ कि जो वैश्य की प्रतिभा कर सकती थी, वह उसने किया। पार्टीशन हुआ, आजादी कटी हुई और मरी हुई हाथ में आई; क्योंकि वैश्य प्रतिभा समझौते पर सदा राजी होती है। बनिया अतिवादी नहीं होता है। वह कहता है, आओ आधा-आधा कर लें। तो गांधी के नेतृत्व का परिणाम है वह बंटवारा; क्योंकि वणिक की बुद्धि झगड़े की नहीं होती है, कम्प्रोमाइज की होती है। उसे निपटारा करना है। आधा-आधा बांट लो और क्या ज्यादा झंझट करनी है। गांधी ऐसा कहें या न कहें, यह सवाल नहीं है।
गांधी के नेतृत्व ने जो मन देश को दिया, वह बनिया का था। और गांधी का इसलिए अंग्रेजों से मेल पड़ा, क्योंकि वह कौम बनियों की कौम थी। गांधी के सिवाय अंग्रेजों से किसी का मेल न पड़ा। भगतसिंह से कैसे मेल पड़ता? सुभाष से कैसे मेल पड़ता? गांधी से पड़ा। पड़ा इसलिए कि दोनों का माइंड एक टाइप का था। बनिया कौम थी। इधर भूल से क्षत्रिय की ताकत मिल गई थी। उधर वैश्य ही लड़ने वाला था, इसलिए देख कर बड़ी हैरानी होगी कि अंग्रेजों ने गांधी की जितनी सुरक्षा की, दुनिया के किसी राज्य ने कभी राज्य के दुश्मन की ऐसी सुरक्षा नहीं की। हम न बचा सके गांधी को अंग्रेजों के जाने के बाद, अंग्रेजों के वक्त गांधी बचा रहा।
बड़े मजे की बात है, अंग्रेजों ने पूरी सुरक्षा दी गांधी को; क्योंकि अंग्रेजों को साफ हो गया कि नाता इसी से बना कर रखो। आज नहीं कल, यही आदमी काम का है। बाकी सबसे झंझट हो जाएगी। गांधी और अंग्रेजों के बीच एक इनर कम्यूनियन, जिसको कहते हैं, एक आंतरिक संबंध हो गया। वह संबंध होना बिल्कुल निश्चित था। वह बिल्कुल स्वाभाविक था। वह टाइप एक था। अंग्रेज

गांधी को समझा सके, और गांधी अंग्रेज को समझा सके और उनका तालमेल बैठ गया, इसलिए हिंदुस्तान आजादी न ले पाया!
हिंदुस्तान को आजादी मिली और मिली हुई आजादी गुलामी से भी बदतर होती है। आजादी छीनी जाती है, ली जाती है, मांगी नहीं जाती। आजादी समझौतों से, वार्ताओं से नहीं मिलती और जब आजादी ली जाती है तो उसमें एक जिंदगी हाती है। उसके खून में गति होती है। और जब आजादी मिलती है, तो वह मरे हुए लोथड़े की तरह होती है। मिली आजादी, लेकिन बेरौनक! उसमें कोई महिमा न थी। और मिलने का जो दुष्परिणाम हुआ, वह भी हुआ।
गांधी रोज-रोज समझाते रहे पूरे मुल्क को कि हिंसा नहीं, हिंसा नहीं! क्योंकि वैश्य-चित्त हिंसा नहीं कर सकता। क्या आपको खयाल आता है कभी कि महावीर क्षत्रिय थे, लेकिन उनके पीछे जो कौम इकट्ठी हुई वह बनियों की है। महावीर क्षत्रिय हैं। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, लेकिन जैनी कोई क्षत्रिय नहीं है, वे सब बनिए हैं। बात क्या है? बनिए को अहिंसा अपील कर गई और कोई बात नहीं है। वह जो मुल्क के भीतर बनिया दिमाग था, उसने कहा, यह आदमी बिल्कुल ठीक कह रहा है, क्योंकि न हम हिंसा करेंगे, न दूसरे हमारी हिंसा करेंगे। जंचती है यह बात। सम्मिलित हो जाओ। गांधी के हाथ में होने की वजह से अहिंसा आंदोलन बनी और अहिंसा के आंदोलन की वजह से हिंदुस्तान को बड़े दुर्भाग्य भी झेलने पड़े। बड़ा दुर्भाग्य तो यह हुआ कि हिंदुस्तान के मन में अंग्रेजों के खिलाफ जो बिल्कुल सहज घृणा और हिंसा थी, गांधी ने उसको कभी प्रकट नहीं होने दिया--उसको दबाया। जरा कहीं हिंसा प्रकट हुई कि गांधी का वैश्य पीछे हट गया। उसने कहा कि नहीं भाई, हम दुकानदार आदमी हैं, हम समझौता करते हैं, हम ऐसी बात नहीं करते हैं। वह पीछे हट गया।
मुझे एक कहानी याद आती है। मुझे खयाल आता है कि कहीं राजस्थान में एक छोटी सी लोक कहानी है। कहानी है कि एक क्षत्रिय है, राजपूत है, वह मूंछ पर ताव देता हैं और घर के सामने बैठा रहता है और उसने गांव भर में खबर कर दी है कि मेरे घर के सामने दूसरा आदमी मूछ पर ताव देकर नहीं निकल सकता है। तो दूसरे लोग मूंछ यहां अपनी नीची कर लेते हैं कि कौन झंझट करे। वह अपने तख्त पर बैठा रहता है तलवार लिए। एक बनिया नया गांव में आया। उसको भी मूंछ रखने की धुन है। वह उसके सामने से निकला। उसने कहाः ऐ भाई, रुक, पहले मूंछ नीची कर। उसने कहाः तू कौन है मेरी मूंछ नीची करने वाला? राजपूत ने कहाः तो फिर ले यह तलवार सम्हाल। आओ हम निपटारा कर लें। उस बनिए ने यहां तक नहीं सोचा था कि तलवार से निपटारा करना पड़ेगा। उस बनिए ने कहाः ठीक है, लेकिन एक काम करो। अगर मैं मर जाऊंगा तो मेरे बच्चे परेशान होंगे, स्त्री परेशान होगी और तू मर जाएगा तो तेरी पत्नी विधवा होगी, बच्चे भीख मांगेंगे। तो एक काम कर। तू पहले घर में जाकर अपनी पत्नी व बच्चों का सफाया कर आ और मैं अपने घर में कर आता हूं। फिर हम दोनों लड़ लें। फिर कोई डर नहीं। क्षत्रिय ने कहाः बिल्कुल ठीक है। अक्ल ही होती क्षत्रिय के पास ज्यादा तो मूंछ पर ताव देकर बैठा न रहता। बनिया घर गया। क्षत्रिय अपने घर गया तो उसने तो सबका फैसला कर दिया। अपने बच्चे सब काट डाले। बाहर आकर खड़ा हो गया। बनिया वहां से मूंछ ही नीची करके आ गया। उसने कहाः मैंने सोचा, क्यों नाहक का झगड़ा करना, मूंछ ही नीची कर लेता हूं।
यह जो चित्त है, इसका अपना अस्तित्व है। निंदा, प्रशंसा--इनसे मुझे प्रयोजन नहीं है। मात्र तथ्य से जरूर प्रयोजन है। इसमें कोई निंदा नहीं है कि क्षत्रिय ऐसा है, वैश्य ऐसा है। गांधी जी भी झंझट में पड़ें, कहीं चोरा-चोरी की घटना हो या कहीं कुछ और हो जाए, फौरन पीछे हट जाना उनका नियम था। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदुस्तान के मन में अंग्रेजों के खिलाफ जो सहज घृणा पैदा हुई थी, हिंसा पैदा हुई थी, वह दब गई और उस दबाव की वजह से हिंदू-मुस्लिम दंगे शुरू हुए। अगर हिंदुस्तान अंग्रेजों से सीधा लड़ता तो हिंदू-मुस्लिम कभी भी नहीं लड़ते। जब हम न लड़ पाए और घृणा इकट्ठी हो गई तो कहीं न कहीं वह निकलेगी। तो हमें रास्ता खोजना पड़ा। हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए।
आमतौर से लोग समझते हैं कि गांधी जी ने हिंदू-मुस्लिम दंगे रोकने की कोशिश की। मैं आपसे कहता हूं गांधी जी ही परोक्ष रूप से जिम्मेवार थे सारे

हिंदू-मुस्लिम दंगों के लिए। अगर थोड़ी सी साइकोलॉजी का, थोड़े मानस-शास्त्र का खयाल हो तो समझ में आएगी बात। इतनी जोर से रोक दी सब तरफ से हिंसा, जो बिल्कुल स्वाभाविक थी कि हिंदुस्तान आग लगा देता अंग्रेजी सल्तनत को। फेंक देता उन्हें मुल्क के बाहर। वह सब वेग रोक दिया गया। अब वह वेग कहां जाए, वह घृणा कहां से निकले?
आपको पता है, एक आदमी दफ्तर में काम करे, मालिक उसको डांट दे, उसकी तबीयत होगी कि गर्दन दबा दे उसकी; लेकिन मालिक की गर्दन कैसे दबाएगा? वह हंसता रहेगा, मुस्कुराता रहेगा, पूंछ हिलाता रहेगा। फिर घर चलेगा। फिर उसकी साइकिल देखें, पैड़ल जोर से चलेगी। क्यों? मालिक को जो नहीं मार पाया, वह पैडल पर ही जोर आजमा रहा है। अब वह जा रहा है तेजी से। अब उसकी पत्नी को समझना चाहिए कि पति परमात्मा घर लौट रहे हैं और मालिक से कोई झंझट हो गई है, लेकिन पत्नी को क्या पता? वह बड़े मजे से प्रतीक्षा कर रही है कि पतिदेव लौटते होंगे। पतिदेव लौट रहे हैं। पति को भी पता नहीं, लेकिन वह गर्दन पकड़ेंगे पत्नी की। रोटी जल गई, बिस्तर ठीक नहीं लगे, हजार बातें हैं। पत्नी को ठीक किए बिना नहीं मानेंगे। उसको करना था मालिक को ठीक, वह कर नहीं पाया। घृणा भीतर थी, वह निकास चाहती है, वह बढ़ेगी। अगर भीतर की नाली बंद कर देंगे तो घर भर में गंदगी बढ़ेगी। नाली भी चाहिए घर में।
हिंसा है, उसका बहाव भी चाहिए। अगर वह ठीक जगह न बह जाए तो गलत जगह से बहेगी और ठीक जगह से बही हुई हिंसा की बजाय गलत जगह से बही हुई हिंसा बहुत महंगी पड़ेगी। लेकिन पत्नी कर क्या सकती है? पति को मार नहीं सकती। अभी तक पत्नी की इतनी हिम्मत नहीं हुई--हो जानी चाहिए, लेकिन पतियों ने समझाया हुआ है कि हम परमात्मा हैं। अब परमात्मा को मारो तो झंझट है। हालांकि मन में शक तो उठता है, लेकिन मानना पड़ता है; क्योंकि उसी ने प्रचार किया है। तो पत्नी बेटे का रास्ता देखेगी, लौटता होगा स्कूल से। ये सब अनकांशस डैविएशंस हैं। बेटा चला जा रहा है नाचता हुआ, उसे कुछ पता नहीं, फिल्म का गीत गाता हुआ। पकड़ लेगी मां गर्दन कि गंदे गीत गा रहे हो? कल भी यही गा रहा था। परसों भी यही गा रहा था। तुमने भी यह गया है, तुम्हारे पति ने भी यही गाया है, उनके बाप-दादे यही गा रहे थे। यह कोई नया नहीं है, लेकिन उसकी गर्दन पकड़ लेती है कि गंदा गीत गाते हो! अब वह बेटा क्या करे? मां को थप्पड़ मारे? अभी तक दुनिया इतनी सभ्य नहीं हो पाई है। वह बेटा जाएगा अपने कमरे में और गुड़िया की टांग तोड़ कर चार हिस्से कर देगा।
माइंड की एनर्जी.ज हैं--ऊर्जाएं हैं। गांधी ने हिंदुस्तान की हिंसा
को रोक कर दमन पैदा किया। वह अंग्रेजों की तरह बही होती तो एक शानदार मुल्क पैदा होता। हिंदुस्तान पाकिस्तान दो मुल्क नहीं होते। लड़ कर तलवार पर धार आ गई होती, लड़ कर हमारी जिंदगी में रस, उमंग, आशा आ गई होती। वह नहीं हो पाया। लेकिन तलवार हमें चलानी पड़ी और पड़ोस में ही चलानी पड़ी, फिर मुसलमान और हिंदू टकराएं और इसलिए पंद्रह अगस्त के बाद जो इतनी बड़ी हिंसा हुई, जिसमें दस लाख लोग मारे गए, इसका जिम्मेवार कौन हैं? लोग बहुत बेईमान हैं। वे कहते हैं, अंग्रेजों ने भड़का दिया--कोई कहता है जिन्ना ने भड़का दिया--नहीं साहब, न जिन्ना, न अंग्रेज। असली कारण यह है कि हिंदुस्तान के मन में आग थी, उसको निकालने का कोई मौका नहीं था, और जब हिंदुस्तान बंटा, एक मौका मिल गया कि अब ठीक है, निकाल लो, वह राहत निकली। सैकड़ों वर्षों से गुलामी की जो पीड़ा थी, उसको बहनेका का कोई उपाय न था, वह बही। हिंदुस्तान भी बंटा, लोभ भी मरे। अगर दस लाख लोग ही मरने थे तो अंग्रेजों से हम कभी का देश छीन लिए होते। दस लाख लोग मरने को किसी भी दिन तैयार होते, तो अंग्रेज उसके दूसरे दिन ही हिंदुस्तान में न होते। लेकिन वह न हो सका।
जब मैं कहता हूं, गांधी जी वैश्य हैं, तो मैं बहुत सोच कर कह रहा हूं, गाली नहीं दे रहा हूं और सम। लेना कि वह वैश्य हैं, इसलिए आगे भी उनसे समझ कर संबंध रखना। वैश्य का अपना उपयोग है, उसकी अपनी जगह है। यह अपनी जगह बहुत कीमती है। ब्राह्मण का अपना उपयोग है, वह अपनी जगह कीमती है। शूद्र का अपना उपयोग है, वह अपनी जगह कीमती है। और किसी की कीमत मानवीय अर्थों में कम और ज्यादा नहीं होती है, लेकिन यह साफ-साफ होना चाहिए। समाजवाद इस सबको लीप-पोत देना चाहता है। मनुष्यों में जो विभिन्न टाइप हैं, उनको पोंछ डालना चाहता है। वह कहता है, मनुष्य एक जैसा है।

एक अंतिम बात, एक मित्र ने कहा है कि आपने कहा कि गांधी जी ट्रेन का विरोध करते थे, टेलीग्राफ का विरोध करते थे, हवाई जहाज का विरोध करते थे। और दो-तीन मित्रों ने पूछा है कि आप गलत बात कह रहे हैं, यह कहां लिखा है?

मैं बहुत हैरान होता हूं। मालूम होता है, आप कुछ पढ़ते-लिखते नहीं हैं। गांधी जी की किताब "हिंद-स्वराज्य" पढ़ें तो मैंने जितना कहा है, उससे हजार-गुना विरोध उसमें यंत्रों का लिखा है। लेकिन "हिंद-स्वराज्य" उन्नीस सौ पांच में लिखी थी, इसलिए कोई कहेगा, उन्नीस सौ पांच में लिखी मिताब से उन्नीस सौ अड़तालिस में मरने वाले आदमी की बाबत निर्णय लेना ठीक नहीं है। मैं भी नहीं मानता, लेकिन उन्नीस सौ पैंतालिस में नेहरू को गांधी जी ने एक पत्र लिखा है। नेहरू ने पूछा है गांधी जी से कि उन्नीस सौ पांच में लिखी "हिंद-स्वराज्य" नाम की किताब में आपने रेलगाड़ी का, टेलीफोन का विरोध किया है, क्या आप अब भी उस विरोध को राजी है? तो गांधी जी ने लिखा है उन्नीस सौ पैंतालिस में कि मैं "हिंद-स्वराज्य" के शब्द-शब्द से आज भी राजी हूं। मालूम होता है; पढ़ते-लिखते नहीं हैं। चिट्ठियां तो बहुत से लोगों ने लिख दीं कि आपको तथ्य पता नहीं है। सच बात यह है कि गांधी जी भी बहुत कम पढ़ने- लिखने में विश्वास करते थे ओर उनको मानने वाला और भी कम पढ़ता-लिखता मालूम होता है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आपने कहा कि गांधी और उनके आचार-विचार में विरोध हैं? लेकिन आपने कोई उदाहरण नहीं दिए!

मैं एक-दो उदाहरण देना चाहूंगा। गांधी जी जीवन भर अहिंसा का उपदेश देते हैं, लेकिन गांधी का व्यक्तित्व वायलेंट है, एक हिंसक व्यक्तित्व है। लेकिन वे अहिंसा की बातें करते थकते नहीं हैं। आप कहेंगे कि आप कैसे कह रहे हैं? इसलिए कह रहा हूं कि इस थोड़ा समझना पड़ेगा। अगर मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि मेरी बात मानते हैं कि नहीं, नहीं तो छुरा मार दूंगा, तो आप कहेंगे कि बड़े हिंसक आदमी हो। उलटा कर लें। मैं आपकी छाती पर छुरा नहीं रखता, छुरा अपनी छाती पर रखता हूं और कहता हूं कि मेरी बात मानते हो कि नहीं, नहीं तो छुरा मार लूंगा, तब मैं अहिंसक हो जाऊंगा? छुरे की सिर्फ दिशा बदल जाने से क्या आदमी अहिंसक हो जाता है?
गांधी जी जिंदगी भर यह धमकी देते रहे हैं कि मैं अपने को मार डालूंगा, अगर मेरी बात नहीं मानते हो। यह हिंसक दबाव है। श्री अंबेदकर को गांधी जी ने दबाया, उपवास और अनशन करके। गांधी जी ने जिंदगी में किसी का हृदय परिवर्तन नहीं किया, यद्यपि इतने उपवास किए। अंबेदकर बेचारा झुक गया, राजी हो गया। बाद में अंबेदकर ने कहा कि गांधी जी इस भ्रम में न पड़ें कि मेरा कोई हृदय-परिवर्तन हो गया। मैं अब भी मानता हूं कि मैं ही सही था और गांधी जी गलत थे, लेकिन फिर भी यह सोच कर कि इस आग्रह के पीछे अगर गांधी जी की जिंदगी चली जाए तो महंगा सौदा हो जाएगा, मैं झुक गया। मेरा हृदय परिवर्तन नहीं हुआ। गांधी जी की जबरदस्ती की वजह से झुक गया हूं। गांधी जी मरने की धमकी जिंदगी भर देते रहे। मरने की या मारने की, दोनों धमकियां हैं हिंसा की, लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ती हैं। हमें दिखाई पड़ती है कि खुद को मारने की धमकी दे रहे हो तो अहिंसा हो गई। सच बात यह है कि वह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। यह अहिंसा नहीं है। अहिंसा का मतलब यह है कि जहां धमकी ही नहीं, न दूसरे को मारने की, न खुद को मारने की।
गांधी जी के साथ जो लोग रहे, गांधी के बेटों से पूछे--हरिदास गांधी से पूछे कि गांधी अहिंसक थे? तो हरिदास मुसलमान क्यों हुआ? गांधी अहिंसक थे तो हरिदास ने शराब क्यों पी, मांस क्यों खाया? गांधी अहिंसक थे तो हरिदास जिंदगी भर गांधी जी के खिलाफ क्यों रहा? असल में गांधी जी की अहिंस भी इतनी टार्चरिंग, इतनी सेडिस्ट थी कि अपने बेटे को भी उन्होंने अच्छी तरह सता डाला। हरिदास भागा उनको छोड़ कर। यह बाप तो मार डालेगा। उसे पता नहीं था कि एक बेटे का बाप जो ठीक से नहीं हो पाया, वह कल राष्ट्रपिता होने वाला

है। असल में एक बेटे का बाप होना बहुत कठिन है, राष्ट्रपिता होना बहुत आसान है; क्योंकि राष्ट्रपिता होने में किसी का पिता नहीं होना पड़ता है। हरिदास से पूछें तो पता चलेगा कि गांधी का व्यक्तित्व हिंसक था कि अहिंसक था। कस्तूरबा से पूछें, हालांकि कस्तूरबा और गांधी जी को लेकर बहुत लेख लिखे जा रहे हैं कि बड़ा आदर्श दांपत्य जीवन था। बकवास करने में हमारी कौम का कोई मुकाबला ही नहीं है। अब गांधी जी और कस्तूरबा के बीच सतत कलह की जिंदगी बीती, लेकिन हम कहेंगे वह आदर्श दांपत्य जीवन था। कस्तूरबा से पूछें, पूरी जिंदगी उठा कर देखें, लेकिन उसको देखने की जरूरत नहीं। हम तो शोरगुल मचाने में, नारेबाजी करने में बड़े कुशल हैं। जब गांधी जी के घर अफ्रीका में कोई मेहमान होता तो उसका पाखाना भी वह कस्तूरबा से साफ करवाते। अब कस्तूरबा रो रही हैं, रोती हुई पाखाने का डिब्बा लेकर सीढ़ियां उतर रही है तो गांधी जी उससे नीचे खड़ा होकर कह रहे हैं कि रो मत, सेवा हंस कर करनी चाहिए। अब उसको बेचारी को दूसरे का पाखाना ढोना पड़ रहा है। वह कोई सेवा नहीं कर रहीं है, वह पति के चक्कर में पड़ गई है और पति एक सिद्धांत के चक्कर में है। वह पाखाना ढुलवा रहा है, लेकिन साथ में यह भी कि हंसते हुए पाखाना ढोओ। कई बार कस्तूरबा का हाथ पकड़ कर आधी रात गांधी जी ने घर के बाहर कर दिया है कि निकल जा घर के बाहर--अगर मेरे सिद्धांत नहीं मानती।
यह व्यक्तित्व अहिंसक नहीं है, यह व्यक्तित्व बिल्कुल हिंसक है, लेकिन सिद्धांत है अहिंसा का। असल में अहिंसा के सिद्धांत के कारण गांधी जी के व्यक्तित्व को समझना मुश्किल हो गया है। जिंदगी बड़ी उलझी बात है, इतनी आसान नहीं है। इसलिए जब मैं कुछ कहता हूं तो बहुत जल्दी निर्णय न लें--सोचें। सिद्धांतों को नहीं, सत्यों को देखें, और अंधे भक्तों की भांति नहीं, सजग विचारों की भांति सोचें--समझें--खोजें। गांधी जी के व्यक्तित्व को उनकी समग्र नग्नता में समझना हितकर है, क्योंकि उस भांति हम इस देश के अत्यंत जड़बद्ध पाखंड को समझने में सफल हो सकते हैं। इस देश की ऊंची सिद्धांतवादी संस्कृति और वस्तुतः एकदम विपरीत वास्तविकता को समझने के लिए गांधी जी बिल्कुल एक फेस हिस्ट्री का काम दे सकते हैं।

समाजवाद से सावधान
पांचवां प्रवचन

पूंजीवाद, समाजवाद और सर्वोदय

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछले चार दिनों में कुछ बातें मैंने आप से कही हैं उसके संबंध में सैकड़ों प्रश्न उपस्थित हुए हैं। आज संक्षिप्त में जितने ज्यादा से ज्यादा प्रश्नों के संबंध में बात हो सके, मैं करने की कोशिश करूंगा।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप यह मानते हैं कि विनोबा जी के सर्वोदय
से समाजवाद आ सकेगा?

विनोबा जी का सर्वोदय हो, या गांधी जी का; समाजवाद उससे नहीं आ सकेगा। क्योंकि सर्वोदय की पूरी धारणा ही मनुष्य को आदिम व्यवस्था की तरफ लौटाने की है। सर्वोदय की पूरी धारणा ही पूंजीवाद की विरोधी है; लेकिन पूंजीवाद से आगे जाने के लिए नहीं, पूंजीवाद से पीछे जाने के लिए है। पूंजीवाद से दो तरह से छुटकारा हो सकता है। या तो पूंजीवाद से आगे जाएं या और पूंजीवाद से पीछे लौट जाएं। पीछे लौटना कुछ लोगों को सदा सरल मालूम होता है और आकर्षक भी, लेकिन पीछे लौटना न तो संभव है, न उचित है; जाना सदा आगे ही पड़ता है-- चाहे मजबूरी से चाहे स्वेच्छा से। जो मजबूरी से जाते हैं वे घसीटे हुए पशु की तरह जाते हैं। जो स्वेच्छा से जाते हैं उनकी चाल में एक गति, और एक आनंद और भविष्य को पाने की एक स्फूर्ति, खुशी, आशा और सपना होता है। इस हमारे देश में पीछे की तरफ जाने की बात इतनी घर कर गई है कि जब भी मुसीबत हो, तो हम पीछे की तरफ हटना चाहते हैं। उसके कारण मनोवैज्ञानिक हैं। उन्हें थोड़ा समझना चाहिए। उससे विनोबा जी के सर्वोदय और गांधी जी के विचार और गांधीवादी पूरी दृष्टि का क्या मनोवैज्ञानिक अर्थ है, वह समझना उपयोगी होगा।
पहली बात तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य के मन में यह खयाल है कि पहले सब अच्छा था, गांव अच्छे थे, शहर बुरा है। क्योंकि शहर नया है, गांव पुराने! लेकिन ये बातें वे ही लोग कहते हैं जो शहरों में रहते हैं, गांव में नहीं। गांव की जिंदगी एक दिन घूम कर देख आना और बात है गांव में जीना बिल्कुल और बात है। और म.जा यह है कि सर्वोदय पर और गांव पर और प्राचीन ग्रामीण व्यवस्था पर, पंचायत पर जिन लोगों का बहुत जोर है, वे सब गांव में नहीं रहते। वे सब शहरों में रहते हैं। शहरों में रह कर वे किताबें लिखते हैं गांवों की सुंदर, प्राकृतिक जिंदगी के संबंध में। यह भ्रम जो हम पालते हैं, ये भ्रम मनमोहक होते हैं लेकिन खतरनाक हैं।
गांव का कोई भविष्य नहीं है, भविष्य है शहर का। आने वाली दुनिया में गांव नहीं होगा, होंगे शहर, और बड़े शहर, जिनकी अभी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। गांव जो है वह वैसा ही है जैसे झोपड़ा है। आने वाली दुनिया में झोपड़ा नहीं होगा, गांव भी नहीं होगा। असल में आने वाली दुनिया, ग्रामीण की दुनिया नहीं, नागरिक की दुनिया होने वाली है।
सच तो यह है कि जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, वैसे-वैसे आदमी जमीन से मुक्त होगा और जब तक आदमी जमीन से पूरी तरह मुक्त नहीं होता, तब तक आदमी पूरी तरह सुसंस्कृत नहीं हो पाएगा। आदमी निरंतर मुक्त हो रहा है बहुत-सी चीजों से, लेकिन अब तक भोजन के लिए जमीन से मुक्त नहीं हो पाया है--लेकिन हो सकता है। और मेरी समझ में टेक्नालॉजी का विकास उसे जमीन के ऊपर अनिवार्य रूप से भोजन के लिए निर्भर रहने से मुक्त कर देगा। बहुत दूर वह दिन नहीं है जब कि आदमी को भोजन के लिए जमीन पर निर्भर नहीं रहना होगा। भोजन भी औद्योदिक उत्पादन से ही पैदा हो सकेगा--सिंथेटिक हो सकेगा, केमिकल हो सकेगा।
जमीन पर निर्भर रहने की बात आगे संभव नहीं है। जमीन छोटी भी पड़ गई है, लोग ज्यादा भी हो गए हैं। और किसान जो है, कृषि जो है, वह अत्यंत पुरानी बात है जो इस बीसवीं सदी की, विकसित टेक्नालॉजी से, जिसका कोई बहुत गहरा संबंध नहीं हो सकता। भोजन के नये मार्ग खोजे जाएंगे। समुद्र से भोजन खोजा जा सकता है, खोज लिया गया है। हवा से भोजन खोजा जा सकता है, सूरज की किरणों से

भोजन खोजा जा सकता है, खोज लिया जाएगा। और आज नहीं कल, काज्मिक से सीधा भोजन भी खोजा जा सकता है। रोज जमीन से, भोजन से छुटकारा जब तक नहीं होता, तब तक दुनिया की दीनता और दरिद्रता मिटने वाली नहीं है। क्योंकि जमीन छोटी पड़ गई है। लोग ज्यादा हो गए हैं। मृत्यु दर हमने कम कर दी है और जन्म दर को कम करना असंभव मालूम पड़ रहा है। सर्वोदय भूमि से बंधे हुए आंदोलन हैं। अतीत की तरफ ले जाने वाला आंदोलन है। वह भविष्य की तरफ ले जानेवाला आंदोलन नहीं है। अब भूमि से बंधे हुए आंदोलन का कोई भविष्य नहीं है।
दूसरी मजे की बात ह कि सर्वोदय की सारी चिंतना त्याग, सरलता, सादगी इन
पर खड़ी हुई है। यह त्याग, सरलता, सादगी हजारों साल से आदमी को सिखाई गई बातें हैं। कोई मानता नहीं। कभी-कभी एकाध आदमी सादा और सरल खड़ा हो जाता है। वह भी सादा और सरल नहीं होता। वस्त्र पहन सकता है सादे और सरल, भोजन कर सकता है सादा और सरल, लेकिन मन उसका सामान्य आदमी से भी ज्यादा जटिल और ज्यादा कांप्लेक्स हो जाता है। सरलता जीवना का सहज हिस्सा नहीं है। जीवन का सहज हिस्सा है विस्तार और जटिलता। ध्यान रहे, जीवन का विकास कांप्लेक्सिटी की तरफ है। अमीबा है एक छोटा सा पहला प्राणी है जिससे मनुष्य विकसित हुआ। अमीबा के पास एक ही सेल है। एक ही सेल से जीता है। बिल्कुल सरल प्राणी है। लेकिन न बुद्धि हो सकती है उसमें, न कुछ और हो सकता है। बस जी सकता है, श्वास ले सकता है और मर जाएगा। अमीबा सरल प्राणी है। फिर जटिलता शुरू होती है, जैसे-जैसे विकास बढ़ता है। बंदर कम जटिल है। आदमी ज्यादा जटिल है, आदिवासी कम जटिल है, बंबई का निवासी ज्यादा जटिल है। जितनी जटिलता बढ़ती है मस्तिष्क की, व्यक्तित्व की, उतना विकास होता है। गांधी जी और विनोबा जी सरलता के पुराने आदर्श से पीड़ित थे। उन सबको यह ख्याल है कि जीवन सरल हो, थोड़ी आवश्यकताएं हों, छोटा झोपड़ा हो, दो कपड़े हों, चरखे से काम चल जाए, जमीन पर खोद कर अगर हाथ से ही पैदावार हो जाए तो बहुत अच्छा। साधन की जरूरत न रहे, उपकरण का उपयोग न हो। लेकिन अस्वाभाविक हैं ये मांगें। ये स्वभाव की तरफ लौटने की बातें बड़ी अस्वाभाविक हैं! आदमी निरंतर जाता है जटिलता की ओर और आदमी निरंतर जाता है आश्यकताओं को बढ़ाने की ओर। दुनिया भर के सारे शिक्षक चिल्ला-चिल्ला कर हार गए कि आवश्यकताएं कम करो। आवश्यकताएं कम नहीं हो सकतीं। जीवन का लक्षण यह नहीं है। जीवन आवश्यकताएं बढ़ाता है। मरना हो तो आवश्यकताएं कम की जा सकती हैं और अगर आवश्यकताएं बिल्कुल... बिल्कुल कम कर दी जाएं तो अंततः मरने के सिवाय कोई उपाय न रह जाए। अगर सारी आवश्यकताएं करनी हैं कम, तो धीरे-धीरे सुसाइडल माइंड, आत्मघाती व्यक्तित्व पैदा होता है जो अपने को मारता चला जाता है और स्वयं को खत्म कर लेता है।
जीवन है विस्तार, फैलाव आवश्यकताओं का। जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना मनुष्य उत्पादन करता है। जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना आविष्कार करता है। जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतने उसके मस्तिष्क के अवरुद्ध हिस्से सक्रिय होते हैं। जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना मनुष्य पशु से मुक्त होता है। पशु के पास बहुत थोड़ी आवश्यकताएं हैं, इसीलिए वह पशु है। और अगर आवश्यकताएंबिल्कुल कम की जाएं तो आदमी को पशु के तल पर ही जीना पड़ेगा। उसकी आदमियत थोथी है। आदमी के होने का मतलब है कांप्लेक्स, जटिल आवश्यकताओं से, विस्तार से भरा हुआ।
सर्वोदय जैसे सारे आंदोलन का लक्ष्य है सरलता, कम आवश्यकता, थोड़े में जियो। इस आग्रह को लेकर चलते हैं। मनुष्य की प्रकृति और मनुष्य के मन की कोई समझ उन सब में नहीं है, लेकिन फिर भी हमारे मन को वे बातें अपील करती हैं। वह अपील इसलिए करती हैं कि जब हम जटिलता से घबड़ा जाते हैं तो पीछे लौटने का मन करने लगता है। अगर अभी एक आदमी पचास साल की उम्र का है, उसके मकान में आग लग जाए तो आप उस मकान के सामने खड़े हुए उस पचास साल के आदमी को दस साल के बच्चे की तरह छाती पीट कर रोते हुए देखेंगे। वह वापस लौट गया है। डिग्रेशन हो गया। अब वह इस समय दस साल का बच्चा है, अब वह पचास साल का आदमी नहीं। मकान में आग लग गई है। बात जटिल हो गई है। उसकी समझ के बाहर है। अब वह जो पैर पटक के रो रहा है, चिल्ला रहा है। वह काम वही कर रहा है जो दस साल का छोटा बच्चा करे तो ठीक। लेकिन पचास वर्ष का आदमी करे तो गलत। लेकिन क्या हो गया इसको? यह पचास साल का आदमी एकदम दस साल का क्यों हो गया! इसका मन दस

साल का व्यवहार क्यों कर रहा है? इसकी समझ के बाहर हो गई बात। इसकी समझ में नहीं आ रहा कि अब मैं क्या करूं? इसलिए यह वापस लौट गया। यह दस साल जैसा व्यवहार कर रहा है।
हम रोज कई बार बच्चे हो जाते हैं और बच्चे हम इसलिए हो जाते हैं कि जब
भी कोई जटिल समस्या खड़ी होती है, तब हमारे मस्तिष्क से मांग होती है कि और ऊपर उठो, और चेतन हो उतनी मांग हम नहीं झेल पाते हैं तो हम वापस लौट जाते हैं। आदमी शराब पी लेता है ज्यादा जब जटिल समस्या सामने आ जाए--क्यों? शराब पी के वह समस्या को भुला देता है। ऐसे वह झंझट से बाहर हो जाता है। भजन कीर्तन करने लगते हैं--ज्यादा जटिल समस्या आ जाए, क्यों? भजन-कीर्तन करते समय वह बच्चों जैसा काम करने लगा। अब वह भूलने की कोशिश कर रहा है। भजन-कीर्तन भी, शराब भी, और पीछे लौटने की आकांक्षा--सदा ही एस्केपिस्ट है, पलायन है। जिंदगी संघर्ष है नई समस्याओं का।
सर्वोदय इत्यादि सब पलायनवादी विचार हैं, जो कहते हैं--जटिलता की दुनिया ही छोड़ दो! बंबई में रहते ही क्यों हो? न्यूयार्क में बसते ही क्यों हो? मास्को में रहने की जरूरत क्या है? लौट जाओ ठेठ गांव में। लौट जाओ वहां जहां जंगली आदमी रहता था। उसी तरह के कपड़े पहन लो। नंगे रह सको तो और भी अच्छा है। चरखे से भी छुटकारा हो जाए तो और भी अच्छा। लौट जाओ पीछे, कंदमूल-फल खा लो। थोड़ा-बहुत खेती-बाड़ी कर लो तो ठीक। बस पीछे लौटने का आग्रह, क्यों? इसलिए है, कि जिंदगी की बड़ी समस्याएं खड़ी हो गई हैं जिनको हल करने मे कुछ लोग घबरा गए हैं। वे पीछे लौटने की बात कर रहे हैं।
मैं मानता हूं कि जब भी बड़ी समस्याएं आती हैं तब मनुष्य की जिंदगी में छलांग लगाने का मौका आता है। कांशसनेस वहीं छलांग भरती है। जब ऐसी समस्याएं घेर लेती हैं जिनका सामना करने के लिए सोचना पड़ता है, विचार करना पड़ता है, जद्दोजहद करनी पड़ती है, प्राणों को दांव पर लगाना पड़ता है और ऐसा हो जाता है कि मरेंगे कि बचेंगे, तभी छलांग--चेतना आगे का कदम उठाती है। इस समय मनुष्यता बहुत सी जटिल समस्याओं के सामने खड़ी हो गई है।
तो दो तरह के लोग हैं। अधिक लोग तो वे हैं--और उनकी बात हमें ठीक मालूम पड़ती है--वे कहते हैं, पीछे लौट चलो, क्योंझंझट में पड़ते हो! पीछे लौट चलो, जहां कोई समस्याएं नहीं थीं। रेलगाड़ी नहीं थी, कारें नहीं थीं, हवाई जहाज नहीं था, बड़े शहर नहीं थे, छोटे-छोटे गांव थे--वहां लौट चलो। ब.ड़ी युनिवर्सिटी न थी, वहां लौट चलो। गुरुकुल थे, दस-पांच बच्चे पढ़ते थे, वहां लौट चलो। ये समस्याएं बड़ी पैदा हो रही हैं। अब एक युनिवर्सिटी है। बीस हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं, तो समस्या पैदा होगी। समस्या यह पैदा होगी कि बीस हजार जवान लड़के दुनिया में इसके पहले कभी एक जगह इकट्ठे न हुए थे। पुराना लड़का अपने बाप के पास था। बाप हमेशा डोमिनेटिंग था, अपने बेटे को दबा लेता था। अब बीस हजार बेटे इकट्ठे हो गए हैं और बीस हजार बाप कहीं भी इकट्ठे नहीं हैं। बहुत मुसीबत हो गई है। वे बीस हजार बेटे इकट्ठे मिल कर एक-एक बाप को बिल्कुल दबाए दे रहे हैं। अब एक रास्ता तो यह है कि उन बीस हजार लड़कों की समस्याओं का सामना करने के लिए कुछ सोचो, जो किं बहुत मुश्किल है। क्योंकि पुरानी संस्कृति के पास कोई उत्तर नहीं है और पुराने किसी ग्रंथ में उत्तर हो नहीं सकता। क्योंकि समस्या नई है।
युवकों का एक जगह इकट्ठा होना बिल्कुल ही नई घटना है। सच तो यह है कि युवक ही नई घटना है। पुरानी दुनिया में युवक नहीं होता था। बच्चे होते थे, बूढ़े होते थे। युवक होता ही नहीं था, न होने का कारण था। क्योंकि युवक होने देने के पहले ही समस्या का हल कर देते थे। बाल-विवाह कर देते थे। बस वह आदमी बूढ़ा हो जाता था। दस साल के लड़के का विवाह कर दिया, युवक होने का मौका ही उसको नहीं मिला। वह बीस साल का युवक होगा तब तक उसके दो बच्चे हो चुके होंगे। वह बूढ़ा हो चुका। बाप कभी भी जवान नहीं होता। बाप बूढ़ा हो ही जाता है। उस पर उत्तरदायित्व, सब जिम्मेवारी खड़ी हो जाती है। पुरानी दुनिया का हल था कि बच्चे को जवान मत होने दो और फिर एक-एक बच्चा अपने-अपने बाप के पास था। इसलिए खतरा नहीं था। अब बीस-पच्चीस हजार किसी गांव में, एक लाख विद्यार्थी जवान एक ही जगह इकट्ठे हैं। अतः एक समस्या सामने आ गई है। अब क्या करो? अब यह रास्ता है कि युनिवर्सिटी तोड़ो। गांव में भेज दो इनको। प्राथमिक शिक्षा दो--जिसको गांधी जी बुनियादी शिक्षा कहते हैं। उतनी

शिक्षा दे दो, बस वह काफी है। बढ़ईगिरी सिखा दो। कुछ जूते का, चमड़े का काम करना सिखा दो। कपड़ा बुनना सिखा दो। बस ठीक है।
मर जाएगा मुल्क, अगर ये शिक्षाएं मान ली गईं। यह बुनियादी शिक्षा हुई
या अशिक्षा हुई या शिक्षा से बचना हुआ? लेकिन समस्या हल हो जाएगी, वे कहते हैं--झंझट से बाहर हो जाएगा मामला। लेकिन इस झंझट से जूझना है, बाहर नहीं होना है। अब यह नया सवाल खड़ा हुआ है तो नये सवाल को नये ढंग से हल करना पड़ेगा। लेकिन पुरानी बुद्धि के पास उत्तर न होने से वह कहती है इससे वापस लौट चलो--उन्हीं दिनों मे जहां समस्या न थी।
अब मैं आपसे यह कहता हूं कि सारी दुनिया में यह सवाल है कि क्या करें लड़कों का। लड़के इकट्ठे हो गए हैं। उनकी क्लास, उनका वर्ग बन गया है। बूढ़ों की कोई क्लास नहीं, कोई वर्ग नहीं। कुछ उपाय सोचना पड़ेगा। कुछ नया विचार सोचना पड़ेगा। मेरी अपनी समझ यह है कि बजाय पीछे लौटने के और गांव को गुरुकुल बनाने के और लड़कों को यह सिखाने के कि बस सिर घुटा कर, चोटी बढ़ा कर, गुरु के चरणों में सिर लगाए बैठे रहो, पैर दबाते रहो--इससे काम नहीं होगा। वह वक्त गया और गुरु जो सिखा पाता था अब उस सिखाने का भी उपयोग नहीं रहा है। अब सिखाने का अर्थ इतना ज्यादाहै कि छोटे-छोटे गुरुकुल नहीं सिखा सकते। ये युनिवर्सिटीज भी हमारी छोटी हैं। अब और बड़ी लाइब्रेरीज चाहिए। ज्ञान इतने जोर से उत्पन्न हो रहा है कि उसे नई पीढ़ी को देने का सवाल बहुत कठिन हो गया है। वह गुरुकुल में नहीं हो सकता। वह एक बूढ़ा आदमी बैठ कर नहीं सिखा सकता।
लेकिन जहां दस हजार लड़के या एक लाख लड़के इकट्ठे हो गए हों, वहां सवाल
है कि अब क्या करें! पुरातनवादी, पलायनवादी कहेगा, अब पीछे लौट चलो, बंद करो युनिवर्सिटी। गांधी जी युनिवर्सिटीज के बड़े विरोध में थे। उन्होंने अपने लड़कों को पढ़ने नहीं भेजा। अपने लड़कों को अशिक्षित रखा पूरी तरह। क्योंकि वे बड़े विरोध में थे युनिवर्सिटीज के। वे मानते थे कि युनिवर्सिटीज भी एक रोग है। विश्वविद्यालय एक रोग है, आधुनिक शिक्षा एक बीमारी है। लेकिन ये जो दृष्टि है, नया ख्याल न मानने से कठिनाई होती है। लेकिन श्रम करो, जूझो नई समस्या से। नया हल खोजो।
मेरी अपनी समझ यह है कि जहां-जहां युनिवर्सिटी कैंप्स हैं उसमेंसाथ
ही रिटायर्ड कैंप्स हों, वहां अनुभवी वृद्धों को इकट्ठा कर दो। जो भी वृद्धजन रिटायर्ड होते हैं युनिवर्सिटी केम्पस के निवासी हो जाएं। अगर दस हजार युवक इकट्ठे हैं युनिवर्सिटी में तो दस हजार वृद्ध लोग भी वहां हों, वहां दोनों क्लासेज जीवन के आमने-सामने हों। निश्चित ही दस हजार वृद्धों की समझ, अनुभव, ज्ञान के--जीवन के मुकाबले ये बच्चे झुक जाएंगे। वहां केम्पस के साथ जोड़ो बूढ़ों को भी, कैंप्स बजाय भागने के, उसका परिणाम बहुत कीमती होगा। क्योंकि जहां दस हजार जीवन भर के अनुभव से वृद्ध हुए लोग इकट्ठे हों और जिनके पास अब कोई काम न हो, जो फुरसत में हो, जो बच्चों को थोड़ा पढ़ा भी सकें, उनके साथ खेल भी सकें, उनके साथ तैर भी सकें, उनके साथ गपशप भी कर सकें, उनसे मिल भी सकें, क्योंकि वह फुरसत में हैं। जहां दस हजार बूढ़े अनुभवी मिल जाएं युनिवर्सिटी को, उस युनिवर्सिटी में युवकों की समस्या विदा हो जाएगी, वहां युवक की समस्या नहीं टिक सकती और दो जनरेशन सीधा एनकाउंटर कर सकेंगी। अभी बड़ी मुश्किल हो गई है।
हम कहते जरूर हैं कि एक ओल्ड जेनरेशन है और एक न्यू जेनरेशन, लेकिन मेरे विचार में नई पीढ़ी तो पीढ़ी है, पुरानी पीढ़ी पीढ़ी नहीं है--वह फुटकर है। वह कहीं इकट्ठी नहीं है। इसलिए नई पीढ़ी को आप कहीं भी मिल सकते हैं। पुरानी पीढ़ी को कहां मिलिएगा? पुरानी पीढ़ी को भी लाओ। लेकिन वे नई समस्याएं हैं, नये सवाल उठेंगे, नया खयाल पैदा करना पड़ेगा नई व्यवस्था देनी पड़ेगी। हमारी कठिनाई यह होती है कि इतना श्रम न उठाएं। पीछे लौट जाएं।
अब सर्वादय-आंदोलन ने भूमि बांटी। बिना इस बात की फिकर किए कि इस देश में भूमि इतनी बंटी हुई है कि अब इसे और बांटना इस मुल्क को गरीब करना है। इस संबंध में विनोबा जी तो कहते हैं कि जो गरीब भूमि देता है उसको मैं और भी ज्यादा कीमत देता हूं। अगर सौ एकड़ वाला पांच एकड़ देता है तो वह कहते हैं, यह कोई बड़ा दान नहीं है। लेकिन अगर पांच एकड़ वाला ढाई एकड़ दान दे देता

है तो वे कहते है कि बहुत बड़ा दान है। बड़ी खतरनाक बात है ये, क्योंकि पांच एकड़ वैसे ही छोटा टुकड़ा है। यह पांच एकड़ वैसे ही गलत है। पांच एकड़ उत्पादक नहीं हो सकती है। लेकिन इसको ये और ढाई एकड़ दान करवा दी। अब उसके पास ढाई बची और दूसरे के पास ढाई बची। पूरे मुल्क का उत्पादन और नीचे गिरा। क्योंकि पांच एकड़ जितना पैदा करती थी, दो टुकड़ों में ढाई-ढाई एकड़ मिल कर उतना पैदा नहीं करेगी। यह मामला बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि मैंने कभी सुना था।
एक राजा को अपने लड़के का विवाह करना था। उसने अपने लड़के के विवाह के लिए वजीर को कहा कि सोलह साल की लड़की फी चाहिए। उस मंत्री ने बहुत खोजा, सोलह साल की सुंदर लड़की न मिली। तब वह आठ-आठ साल की दो लड़कियां ले आया; गणितज्ञ था। उसने सोचा कि ठीक है एक रुपया न सही तो अठन्नी दो सही। सोलह साल की लड़की नहीं मिलती है तो आठ-आठ साल की दो लड़कियां और आठ-आठ साल की न मिले तो चार-चार साल की चार से कर दो। लेकिन चार-चार साल की चार लड़कियां मिल कर सोलह साल की स्त्री नहीं बनती। यह गणित नहीं है। विनोबा ने जो हिसाब फैलाया है, उसमें जमीन के और टुकड़े करवा दिए और मजा यह है कि हमारा मुल्क ऐसा नासमझ है कि कुछ हिसाब ही नहीं। प्रचार पर जीता है।
नागपुर युनिवर्सिटी ने अभी एक अनुसंधान करवाया है। उस अनुसंधान के ठीक आंकड़े मुझे ख्याल नहीं हैं, लेकिन करीब-करीब आंकड़े ऐसे हैं। उस अनुसंधान में बड़ी अदभुत बातें पता चली हैं। वह अनुसंधान एक-एक घर में पहुंचा दिया जाना चाहिए। उससे पता चला है कि जितनी जमीन भूदान में मिली है, उसमें नब्बे प्रतिशत तो सरकारी जमीन है, नब्बे प्रतिशत तो सरकारी जमीन है जो मिली है। सात प्रतिशत ऐसी जमीन है कि जिसमें अभी कुछ भी पैदा हो नहीं सकता। और तीन प्रतिशत में कोई एक प्रतिशत जमीन ऐसी है जो मुकदमेबाजी में उलझी है, जिसका कोई पक्का भरोसा नहीं है। सौ एकड़ जमीन मिली उसमें बाबा विनोबा के हाथ कितनी पड़ी और भूदान-आंदोलन को कितनी मिली? लेकिन इससे क्या मतलब है? मतलब है कि कितने लाख एकड़ मिल गई इसका शोरगुल मचाओ! वह कहां से आई है, जमीन किसकी है, जिसने दे दी है, वह अभी भी कब्जा किए बैठा है? ऐसा भी है कि जिनके पास जमीन नहीं थीं उन्होंने भी दान की है। क्योंकि भीड़ में दान करने में क्या हर्ज है? जब जमीन देने की बात आएगी तब देखा जाएगा।
और मजा यह है कि इस मुल्क की जमीन इतने टुकड़ों में बंटी है कि इसे दान करवा के और टुकड़े करवा कर इस मुल्क का सवाल हल नहीं होगा। इस मुल्क की खेती को टुकड़ों से मुक्त करने की जरूरत है। गांव की सारी खेती इकट्ठी हो सके तो खेती इंडस्ट्रियल हो सकती है। तो खेती को उद्योग बनाया जा सकता है। लेकिन हमारे ख्याल ऐसे हैं, बहुत पुराने दिनों से कि समस्या दान से हल हो जाएगी। समस्या इतनी बड़ी है कि दान से हल नहीं होगी और समस्या को हल करना हो तो उसकी जड़ों को खोजना पड़ेगा कि जड़ें कहां हैं। हमें ऐसा लगता है कि आदमी को सिखा दें कि सरल जीवन रहो, दो रोटी खा लो, एक कपड़ा पहन लो तो हल हो जाएगी। लेकिन इतना सरल मामला नहीं है। आदमी एक कपड़ा और दो रोटी लाने को राजी नहीं है। उसको जब तक दो रोटी नहीं मिली है तब तक वह कहता है कि ठीक है। दो रोटी मिल जाती है तो वह कहता है, दो रोटी से क्या होगा, वह कहता है, मुझे साबुन भी चाहिए और साबुन भी उसे मिल जाए तो वह कहता है, रेडियो भी चाहिए और रेडियो मिल जाए तो कहता है, कार भी चाहिए। वह ठीक ही कहता है। गलत नहीं कहता है। जिंदगी फैलती है, नई मांग करती है--करनी चाहिए। क्योंकि नई मांग होगी
तो ही जिंदगी में गति और डाइनैमिज्म पैदा होगा। और अगर कोई समाज सरलता की बात पर राजी हो जाए और कम के लिए राजी हो जाए तो वह नॉन-डाइनैमिक, मरा हुआ समाज होगा। आदिवासियों के समाज हैं--वे मरे हुए, नॉन-डाइनैमिक समाज हैं। वहां कोई गति नहीं है, कोई विकास नहीं है। कोई तानसेन कभी पैदा नहीं होता, कोई आइंस्टीन कभी पैदा नहीं होता, कोई कवि पैदा नहीं होता, कोई कालिदास पैदा नहीं होता, कोई नहीं पैदा होता। आदमी जीता है पशुओं की भांति। रोज उठता है, थोड़ा सा खाकर जी लेता है। सो जाता है, बच्चे पैदा करता है और मर जाता है। मनुष्यता नहीं, पशुता के तल पर वह जीता है। सर्वोदयी या गांधीवादी विचार-चिंतन, मनुष्य के विस्तार और भविष्य का चिंतन नहीं है। उससे नहीं आएगा समाजवाद।

समाजवाद लाना हो तो विस्तार का दर्शन चाहिए, फैलाव का दर्शन चाहिए। आवश्यकताओं को अनंत करने का दर्शन चाहिए। और मजा यह है कि जितनी ज्यादा आवश्यकताएं फैलती हैं और मनुष्य को उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जितना, जितना श्रम करना पड़ता है, उतनी उसकी प्रतिभा और आत्मा निखरती है। और अंतिम निखार उसका जो है वह बहुत अदभुत है। अंतिम निखार यह है कि निरंतर आवश्यकताओं को बढ़ा कर निरंतर नई आवश्यकताओं को अनुभव करके, वह जो व्यक्तित्व में निखार आता है, उसके आखिरी परिणाम में यह पता चलता है कि आवश्यकताएं कितनी ही बढ़ जाएं, धन कितना ही उपलब्ध हो जाए, महल कितना ही बड़ा हो जाए, सब जब हो जाता है तब पता चलता है कि एक और डाइमेंशन भी है, भीतर की आत्मा का! अगर वह न फैले, अगर वह न बड़ा हो तो यह सब व्यर्थ पड़ा रह जाता है। धनी आदमी को ही धन की व्यर्थता का बोध होता है। धन की अंतिम सार्थकता मैं यही मानता हूं कि वह आदमी को धन से मुक्त होने की क्षमता दे सकती है। जिसके बाहर की सारी जरूरतों का फैलाव हो जाता है, उसको पहली दफे भीतर की जरूरत का बोध होता है।
मैंने सुनी है उपनिषद की एक छोटी सी कहानी। एक युवक गुरुकुल से वापस लौटा। वहां से वह ब्रह्मज्ञान की बातें करता हुआ आया। वहां उसने सीख लिया ब्रह्म ज्ञान, वह आ गया। बाप ने उसकी बातें सुनी, वह सुबह से शाम तक ब्रह्मज्ञान की बातें करे। उसके बाप ने कहा, देख पहले तू पंद्रह दिन का उपवास कर; फिर हम तुझसे ब्रह्मज्ञान की बातें करेंगे। उस लड़के ने उपवास किया। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गए। उसने ब्रह्मज्ञान की बातें करनी बंद कर दीं और भोजन की बातचीत शुरू कर दी। सात दिन बीते, वह लड़का सुबह से शाम तक भोजन की ही बात करने लगा। रात को भोजन के सपने देखने लगा। पंद्रह दिन बीते, उसका बाप अगर उसे कभी छेड़े भी कि कुछ ब्रह्म के बाबत कहो तो चुपचाप बैठा रह जाए और अगर कोई जरा भोजन की चर्चा छेड़ दे तो उसके भीतर से धारा बहने लगे। पंद्रह दिन बीत जाने पर उसके बाप ने कहा, आ अब बैठ। अब ब्रह्म के संबंध में कुछ बातें करें। लड़के ने कहा, भाड़ में जाने दो ब्रह्म। अन्न के संबंध में कुछ कहिए पिताजी! तो उसके बूढ़े बाप ने कहा कि देख बेटा, मैं तुझे यह कहता हूं कि अन्न पहला ब्रह्म है। यह तू पहले सीख ले। जिंदगी की जिन्हें हम सामान्य जरूरतें कहते हैं, वह पहला ब्रह्म है। वह पूरा हो जाए, जिंदगी का जिसे हम विस्तार कहते हैं आवश्यकताओं का, वह बाहर का ब्रह्म है--वह पूरा हो जाए तो भीतर के ब्रह्म का बोध शुरू होता है।
समझ में तो ऐसा आता है कि गांधी जी और विनोबा जी की जो समाज व्यवस्था होगी, बड़ी धार्मिक होगी। मेरी समझ में नहीं आता। धार्मिक व्यवस्था पैदा ही नहीं होती दीन-दरिद्र स्थितियों में। धर्म का फूल भी खिलता है सुविधा में, संपन्नता में। जब भी सुविधा और संपन्नता होगी, तभी लोग धर्म-चिंतन की तरफ उत्सुक हो जाएंगे। क्योंकि जिनके पेट भरे हैं, अब वे आत्मा को भरने की तलाश करेंगे। लेकिन जिनके पेट ही खाली हैं, अभी आत्मा का सवाल नहीं उठता। इसलिए मेरी समझ में सर्वोदय के लाने से समाजवाद नहीं आएगा। किसी दिन समाजवाद आए तो सर्वोदय आ सकता है और समाजवाद आएगा पूंजीवाद के विकास से। पूंजीवाद का विकास हो तो समाजवाद फल होगा। और समाजवाद ठीक से विकसित हुआ तो जो स्थिति होगी सर्वहित की, सबके उदय की, सबकी समानता की, उसे कोई चाहे तो सर्वोदय कहे, कोई चाहे तो साम्यवाद कहे। इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। सर्वोदय से समाजवाद नहीं, समाजवाद से सर्वोदय आ सकता है और समाजवाद बिना पूंजीवाद के विस्तार के नहीं आ सकता। और जिसे हम सर्वोदय कहते हैं वह कहता है--पूंजीवाद का विस्तार छोड़ो। यह मशीन और उद्योग का युग छोड़ो। पीछे लौट चलो। राम-राज्य में लौट चलो।
इसलिए मेरी दृष्टि अगर आपके खयाल में आई हो, तो वह यह है कि सर्वोदय इस समय समाजवाद के आने में सबसे बड़ी बाधा हो सकता है। क्योंकि सर्वोदय पूंजीवाद के पीछे लौटने की बात कर रहा है। और समाजवाद पूंजीवाद के आगे का कदम है। अगर सर्वोदयी हम हो गए तो समाजवादी हम फिर कभी न होंगे। समाजवाद तो फिर असंभव है। लेकिन सर्वोदयी हम होंगे नहीं। विनोबा हार चुके और थक कर बैठ गए हैं। बुरी तरह हार गए, अब नहीं लगता उन्हें कि उनसे कुछ होगा। इसमें कसूर विनोबा का नहीं है। इसमें कसूर जनता का नहीं है। इसमें कसूर गलत दृष्टि और दर्शन का है। थकेंगे ही, हारेंगे ही, हार सुनिश्चित है क्योंकि

मनुष्य के स्वभाव का हमें खयाल ही नहीं है। मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल जीवन का दर्शन और दृष्टि होनी चाहिए।
मेरी समझ है कि पूंजीवाद मनुष्य के अत्यंत अनुकूल जीवन-दृष्टि वाला दर्शन है। पूंजीवाद, सिर्फ पूंजी की ही वह व्यवस्था नहीं है, बल्कि एक फिलासफी ऑफ लाइफ, एक जीवन का दर्शन भी है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि पूंजीवाद का विकास होगा तो समाजवाद आएगा, लेकिन कौन लाएगा समाजवाद?

हमें ऐसा लगता है कि कुछ चीजें लाने से ही आती हैं। मैं कहता हूं, बच्चा विकसित होगा तो जवानी आएगी। आप यह नहीं कहते, कौन लाएगा जवानी। मैं कहता हूं कि जवान विकसित होगा तो बुढ़ापा आएगा। आप नहीं कहते कि कौन लाएगा बुढ़ापा। जवानी का विकास अपने आप बुढ़ापा बनता है। बचपन का विकास अपने आप जवानी बनता है। लाने की बात नहीं है। समाज की जिंदगी की भी अपनी अवस्थाएं हैं। पूंजीवाद विकसित हो तो अपने आप समाजवाद बनता है, कोई लाता नहीं। और जब तब लाने की बात आप करेंगे, उसका मतलब है कि अभी पूंजीवाद पूरी तरह विकसित नहीं हुआ। इसलिए समाजवाद लाना पड़ रहा है। समाजवाद तभी तक जरूरी है जब तक पूंजीवाद विकसित नहीं हुआ है। जबरदस्ती करनी है तो लाना पड़ेगा। आने देना है तो आएगा, आ सकता है--अगर हम जबरदस्ती न करें। तो जब आप पूछते हैं, कौन लाएगा, तो मैं कहता हूं, व्यवस्था अपने आप रूपांतरित होती है। जवान अपने आप बूढ़ा हो जाता है। और पता भी नहीं चलता है कि किस तिथि में कैलेंडर के गणित के मुताबिक किस दिन जवान बूढ़ा हुआ। आप में से कई लोग बूढ़े हुए, कई लोग बच्चे से जवान हुए। बता सकते हैं, किस दिन यह घटना घटी? किस दिन आप जवान हुए? आप कहेंगे, यह तो कुछ पता नहीं। जिंदगी में ग्रोथ जो है, वह इतना चुपचाप है कि कोई सीमा-रेखा नही बांधी जा सकती कि इस दिन यह घटना घट गई। पूंजीवाद बदलेगा, लेकिन फिर भी हम सोच सकते हैं कि कब बदलेगा। मेरे ख्याल में हैं दो बातें--कहना चाहता हूं।
पहली बात यह कि संपत्ति अतिरिक्त हो; इसके पहले नहीं बदला जा सकता है। उसके पहले बदलने के सब प्रयत्न असफल होंगे। चेकोस्लोवाकिया में, युगोस्लाविया में या और दूसरे कम्युनिस्ट देशों में पूंजीवाद वापस लौट रहा है। जिन्होंने जल्दबाजी की थी वहां पूंजीवाद वापस लौट रहा है। अब उनको समाजवादी ढांचे को फिर शिथिल करना पड़ रहा है। अब भूल पता चल गई। अब वे समझ रहे हैं कि गलती हो गई; ढांचे को शिथिल करो। तीस-चालीस साल के अनुभव ने बता दिया कि यह बात मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल जो है, उसे लाओ। कोई जबरदस्ती एक दिन काम करा सकते हैं, तीन दिन भी, लेकिन अनंत काल तक यह नहीं हो सकता। अनंत काल तक तो जो मनुष्य का स्वभाव है, वही होगा। पूंजीवाद संपत्ति के अतिरेक, बाहुल्य से है, लेकिन संपत्ति का बाहुल्य कैसे होगा? मनुष्य के श्रम से नहीं होगी संपत्ति बाहुल्य कभी। मनुष्य की जगह टेक्नालॉजी को स्थापित करने से होगी। इसलिए बजाय पूंजीवाद की जगह समाजवाद स्थापित करने की पागल चेष्टा में लगने के उचित है कि मनुष्य की जगह टेक्नालॉजी को विकसित करने की हम फिकर करें।

एक मित्र ने पूछा है कि टेक्नालाजी के विकास की आप बात करते हैं, यह कोई बच्चों का खेल नहीं है!

यह बच्चों का ही खेल है टेक्नालॉजी का विकास। जर्मनी को जाकर देखें
या जापान को जाकर देखें। दूसरे महायुद्ध में जापान नेस्तनाबूद हो गया था। जमीन से मिल गया था। इस बुरी तरह बरबाद हुआ कि जैसा कभी कोई मुल्क नहीं हुआ होगा। लेकिन बीस साल में जापान युद्ध के पहले से ज्यादा समृद्ध है। जर्मनी मिट गया बुरी तरह। सब बर्बाद हो गया, लेकिन फिर बीस साल, बीस साल में खड़ा हो गया। लेकिन वहां भी फर्क दिखेगा। कुछ मेरे मित्र बर्लिन गए हैं। वे कहते हैं कि बर्लिन के उस हिस्से में जो कम्युनिस्टों के हाथ में है और उस हिस्से में जो कम्युनिस्टों के हाथ में नहीं है, जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ता है! जो हिस्सा कम्युनिस्टों के हाथ में है वह अब भी दीन-
62

दरिद्र है। जो हिस्सा कम्युनिस्टों के हाथ में नहीं है, वहां की संपन्नता बहुत बढ़ी है। वह वहां बर्लिन एक प्रतीक की तरह खड़ा है--कम्युनिस्ट व्यवस्था और कैपिटलिस्ट व्यवस्था के बीच सीधा चुनाव साफ वहां हुआ जा रहा है।

मेरे एक मित्र ने पूछा है कि आप पूंजीवाद की इतनी तारीफ करते हैं। क्या रूस में मशीनें विकसित नहीं हुई? क्या वहां टेक्नालॉजी विकसित नहीं हुई? उन्होंने भी तो चांद तक पहुंचने की कोशिश की। उनके पास भी तो सब है... !

जरूर विकसित हुआ, मैं नहीं कहता कि विकसित नहीं हुआ। मास्को में भी एक गगनचुंबी इमारत है। न्युयार्क में सैकड़ों हैं। मास्को में एक गगनचुंबी इमारत है, लेकिन उस इमारत को आदमी को भूखा रख कर खड़ा किया गया है। उस इमारत के लिए बलिदान देना पड़ा है और वह इमारत सिर्फ दुनिया से जो यात्री आते हैं उनको दिखाने के लिए खड़ी करनी पड़ी है कि रूस कोई गरीब मुल्क नहीं है। हमारे पास भी आकाश को छूने वाले मकान हैं। लेकिन अमरीका में वे मकान चुपचाप अपने आप विकसित हुए हैं--ऐसे जैसे जमीन से पौधा बड़ा होता है। अमरीका में उन मकानों को विकसित करने के लिए किसी पर जोर जबरदस्ती, किसी को कुर्बानी और किसी को त्याग नहीं करना पड़ा। वे मकान अपने से विकसित हुए हैं। रूस के पास भी जमीन के नीचे चलने वाली रेलगाड़ी का मार्ग है और उस मार्ग पर संगमरमर के पत्थर भी लगे हैं, लेकिन रूस को पचास साल में इस सबके लिए त्याग और बलिदान करना पड़ा है। इधर बड़े होटल हैं जिनमें कि यात्री ठहरे हुए हैं और उधर होटल के बगल में ही उन्नीस सौ पैंतीस तक क्यू लगा हुआ है एक-एक रोटी के लिए। वे दोनों बातें एक साथ चल रही हैं, वह हमारे खयाल में नहीं है, उसका हमें पता नहीं चलता। अभी उन्होंने चांद पर पहुंचने की पूरी कोशिश की, फिर उनको पीछे पैर हटा लेने पड़े, क्योंकि अंततः वह बहुत महंगा पड़ने लगा। एक आदमी को उतारने के लिए कोई एक सौ अस्सी अरब रुपये का खर्च पड़ा। आखिर रूस फिर धीरे से पीछे हटा, क्योंकि भीतर नीचे जनता का दबाव बढ़ता चला गया कि इधर हमको भूखों मार रहे हो, उधर चांद पर जा रहे हो।
अमरीका के लिए खिलवाड़ था चांद पर जाना, रूस के लिए महंगा दांव था। विकास उन्होंने भी किया है तकनीक का, लेकिन उनकी तकनीक का विकास एक आरोपित विकास है। वह आरोपित किया गया, इसलिए पिछड़ गया है। अब वहां के आदमी ने पचास साल के बाद अब हिम्मत छोड़ दी, अब वह काम करने को उतना राजी नहीं है। वह दिन गए क्रांति की हवा के और जोश के। बुखार में थोड़े दिन दौड़ाया जा सकता है। जिंदगी दौड़ती है सहज नियमों से। सहज नियम आदमी का पूंजीवाद के पास है।
जब मैं यह कहता हूं कि खेल है टेक्नालॉजी तो मेरा मतलब यह नहीं है कि
वह कोई आज जादू से पैदा हो जाएगी। लेकिन आप यदि यही सोचते हैं कि यह कोई खेल थोड़े ही है जो कि थोड़े वर्षों में विकसित हो जाएगी तो हजार साल में भी विकसित न होगी।
मैंने सुना है कि एक गांव के बाहर एक आदमी बैठा हुआ है सुबह अपनी लालटेन लिए हुएः कोई उसके पास से गुजरा है, उससे पूछा है, आप यहां बैठे क्या कर रहे हैं? उसने कहाः मुझे जाना है दूर--दस मील दूर पहाड़ के ऊपर जो मंदिर है, वहां जाना है। प्रश्नकर्ता ने कहाः चलो चलें, उठते क्यों नहीं? उसने कहा, मेरे पास लालटेन बहुत छोटी है, तीन-चार फुट तक रोशनी जाती है और दस मील का रास्ता है तो मैंने बैठ कर हिसाब लगाया तो देखा कि इससे तो अंधेरा पार हो ही नहीं सकता कभी। तीन फुट की रोशनी, दस मील अंधेरा, हिसाब कैसे चलेगा? इतनी सी लालटेन से काम कैसे चलेगा? उस आदमी ने कहाः पागल उठ, अगर तू यहां बैठा रहा तो मर जाएगा, यह गणित तुझे डुबा देगा। तू उठ और चल, क्योंकि जब तू चलेगा तीन कदम, रोशनी तीन कदम और आगे पहुंचेगी। अगर हिसाब लगाते बैठा रहा तो तू कभी नहीं पहुंचेगा दस मील और अगर हिसाब नहीं लगाया और चल पड़ा तो एक छोटी सी लालटेन हजार मील की यात्रा भी करा देगी।
हमारी तकलीफ क्या है इस मुल्क में? हम बड़े बुद्धिमान हैं। बहुत दिनों
से हम हर चीज का बहुत हिसाब लगाते रहे हैं। हम कहते हैं, तकनीकी क्रांति कब होगी, बीस साल लग जाएंगे, कैसे होगी--और बड़े-बड़े हिसाब फिर हमें डरा देते हैं। फिर हम वह भयभीत करने वाला हिसाब छोड़--जो हो सकता है अभी, उसे करने में

लग जाते हैं। जैसे सांप्रदायिक दंगों में या भाषावार प्रांतों के उपद्रवों में। ऐसे हम कुछ कर रहे हैं, यह प्रण भी बना रहता है और बिना कुछ किए समय भी बीतता जाता है। नहीं, ऐसे नहीं चलेगा। तकनीकीकरण का मार्ग चाहे कितना ही लंबा हो, चलना शुरू करना पड़ेगा आज, अभी--अब हो--तो वह सब हम भी कर पायेंगे जिसे कि कोई और कर पाया है। संकल्प चाहिए, श्रम चाहिए और टुच्चे झगड़ों और व्यर्थ की समस्याओं से मुक्ति चाहिए। अन्यथा हम रोज पिछड़ते जा रहे हैं। जहां खड़े हैं, वहां खड़े-खड़े ही पिछड़ते जा रहे हैं।
अभी मैंने एक हिसाब देखा कि दुनिया भर में, मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में जितने वैज्ञानिक पैदा हुए उनमें से नब्बे प्रतिशत आज जिंदा हैं पूरी मनुष्य-जाति के वैज्ञानिक। इसका मतलब यह हुआ कि नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिक सिर्फ पिछले पचास सालों में पैदा हुए थे। और दस प्रतिशत वैज्ञानिक केवल पिछले दस हजार सालों में पैदा हुए हैं। उन नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिकों में भी पचास प्रतिशत से ऊपर आज सिर्फ अमरीका में ही इकट्ठे हैं। इसका मतलब है कि सारी मनुष्य-जाति के इतिहास में जितने वैज्ञानिक विचार, चिंतन और प्रतिभा हुई है, उसका पचास प्रतिशत एक मुल्क के पास इकट्ठा हो गया है। वह प्रतिभा इकट्ठी होती जा रही है। वह हमसे बहुत जल्दी उस जगह पहुंच जाएंगे जहां हमें बहुत कठिनाई हो जाएगी कि अब हम कैसे पार करें। इसलिए हमें अब तेजी से लग जाना चाहिए, लेकिन हमारे हिसाब दूसरे हैं। हम इस फिकर में लगे हुए हैं कि संपत्ति का बंटवारा कैसे हो। हम इस चिंता में लगे हुए हैं कि हड़ताल कैसे होगी, घिराव कैसे हो, युनिवर्सिटी की परीक्षा एकदम आगे कैसे बढ़ाई जाए, या पीछे हटाई जाए। एक गांव मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में। हमारे पागलपन का कोई हिसाब नहीं है। हम ऐसी बातों में लगे हुए हैं कि चंडीगढ़ पंजाब के पास हो कि चंडीगढ़ हरियाणा के पास हो। चंडीगढ़ जहां है, वहीं है, नाहक परेशान हुए जा रहे हैं।
मैंने सुना है, हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटा, तो एक पागलखाना भी आ गया बीच में। उसके भी बंटवारे का सवाल हुआ। अब बड़ा मुश्किल हुआ, क्योंकि न पाकिस्तानी उत्सुक थे पागलों को लेने में, न हिंदुस्तानी उत्सुक थे। तो उन्होंने कहा कि पागलों से ही पूछ लो। अधिकारी गए और उन्होंने पागलों को समझाया, बहुत समझाया। क्या तो उनकी समझ में आया, यह बड़े मजे की बात है कि बुद्धिमानों को समझ में आ गया कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटना चाहिए, उन पागलों को अधिकारियों ने बहुत समझाया। उन्होंने कहाः बंटना ही क्यों चाहिए? तो उन्होंने कहाः हिंदु-मुसलमान! तो उन्होंने कहाः होंगे। हमारे यहां हिंदु मुसलमान हैं, कई मुसलमान पागल थे, कई हिंदु पागल थे। हममें कोई झगड़ा नहीं होता। तो बाहर के हिंदु-मुसलमान क्या हमसे भी आगे निकल गए? हम तो मजे से जीते हैं। हिंदु के हाथ की चाय मुसलमान पी लेता है। कभी छुरेबाजी नहीं करते, तो फिर हमको पागल क्यों कहते हो?
अधिकारियों ने कहाः भाई, हम तुम्हें इससे ज्यादा नहीं समझाने को--हम तुमसे सिर्फ यह कहते हैं कि तुम्हें जाना कहां है। तुम हिंदुस्तान में जाना चाहते हो कि पाकिस्तान में? उन पागलों ने कहाः हम तो यहीं रहना चाहते हैं। उन अधिकारियों ने कहाः घबड़ाओ मत, रहोगे तो तुम यहीं, लेकिन जाना कहां है? तो उन पागलों ने कहाः आप भी पागल हो गए क्या? जब हम रहेंगे यहीं तो जाने का सवाल ही क्या है?
वे अधिकारी बड़ी मुश्किल में पड़ गए। पागलों को समझाना बहुत मुश्किल हुआ। फिर उन्होंने सोचा, यह तो फिजूल की मेहनत है, ये पागल न समझेंगे। फिर तो उन्होंने एक रेखा खींच कर पागलखाने के दो हिस्से कर दिए। आधा पागलखाना पाकिस्तान हो गया, आधा पागलखाना हिंदुस्तान में आ गया। अब वह बीच में एक दीवाल खिंच गई और अभी मैंने सुना है कि पागल कभी-कभी दीवाल पर चढ़ जाते हैं और एक-दूसरे से कहते हैं, बड़ा मजा है। हम सब वहीं के वहीं हैं, तुम भी वहीं हो, हम भी वहीं हैं, लेकिन तुम पाकिस्तानी हो गए, हम हिंदुस्तानी हो गए-- सिर्फ इस एक दीवाल की वजह से। और वे बहुत हंसते हैं!
लेकिन हिंदुस्तान-पाकिस्तान का पागलपन तो था ही, पागलपन खत्म नहीं हुआ। अभी मैसूर में रहे एक हिस्सा, एक जिला कि महाराष्ट्र में रहे। महाराष्ट्र के पागल चिल्लाएंगे कि महाराष्ट्र में चाहिए, मैसूर के पागल चिल्लाएंगे कि मैसूर में चाहिए। कोई भी नहीं पूछेगा, जिला जहां का तहां

है, काहे के लिए परेशान हुए जा रहे हो? लेकिन सारा मुल्क इस तकलीफ में है। मुल्क के सामने असली सवाल न उठाकर मुल्क के नेता गलत सवाल उठा कर मुल्क के मस्तिष्क को विकृत कर रहे हैं।
मुल्क के सामने असली सवाल दूसरे हैं--मुल्क के माइंड को डेविएट कर रहे हैं पूरे समय। कोई पागल कहेगा कि गौहत्या बंद होनी चाहिए--इधर आदमी मरने के करीब है और कुछ को सवार हुई है सनक कि गौहत्या बंद होनी चाहिए। वह तो किसी को सवार हो जाए कि मच्छर-हत्या नहीं होनी चाहिए, खटमल हत्या नहीं होनी चाहिए। तो वह भी नेता बन सकता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। इधर आदमी मरने के करीब है, यहां पूरा मुल्क सदा के लिए पिछड़ जाने के करीब है। खतरे बड़े हैं हमारे सामने।
सारी दुनिया के समझदार हिसाब लगाने वाले कहते हैं, उन्नीस सौ अठहत्तर
तक हिंदुस्तान में महा अकाल पड़ेगा। जिसमें बीस करोड़ लोग भी मर सकते हैं। लेकिन मैं दिल्ली में एक बड़े नेता से बात कर रहा था। तो उन्होंने कहा, उन्नीस सौ अठहत्तर बहुत दूर है, अभी तो सवाल उन्नीस सौ बहत्तर का है। हमको कोई मतलब नहीं है उन्नीस सौ अठहत्तर से, पहले उन्नीस सौ बहत्तर तो निपट जाए। और अकाल जब होगा होगा, बीस-करोड़ जब मरेंगे--मरेंगे, अभी सवाल कुर्सी का है, उस पर कौन बैठेगा। भाई बैठता है कि बहन बैठती है। कौन बैठता है यह है सवाल, सारे मुल्क को व्यर्थ के सवालों में उलझा रहे हैं। इस समय मुल्क के सामने एक ही महत्वपुर्ण सवाल है, वह यह है कि संपत्ति कैसे पैदा हो, यह मुल्क जीने और खाने लायक अपनी आवश्यकताओं को जरूरी ढंग से पूरी करने लायक तकनीकी क्रांति से कैसे गुजर जाए--यह सवाल है। लेकिन वह हल नहीं होगा। वह हल इसलिए न होगा कि हमारे दिमाग में इतने मकड़ी के जाले बुने हुए हैं जिनका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है और किसी मकड़ी के जाले को तोड़ो तो खतरा होता है, क्योंकि कोई मकड़ी का जाला किसी के लिए पूज्य है, कोई मकड़ी का जाला किसी के लिए पूज्य है। किसी मकड़ी के जाले पर किसी का महात्मा बैठा है, किसी मकड़ी के जाले पर किसी का देवता बैठा है। बड़ी कठिन बात है। वे देवता और महात्मा बड़ी बाधा डाल देते हैं।
अगर मुल्क को टेक्नालॉजिकल क्रांति से गुजारना है तो हमें चरखे की भाषा में सोचना बंद करना पड़ेगा, हमें सोचना पड़ेगा वृहत्-काम यंत्रों की भाषा में। लेकिन इधर हम गांधी का जयकार किए चले जाएंगे और उधर हम टेक्नालॉजी के विकास की बात सोचेंगे। समझते नहीं आप कि इसके भीतर एक इनर कंटराडिक्शन, एकविरोधाभास है। इधर जयकार हम गांधी का करेंगे जो कि उद्योग के विरोधमें, इंडस्ट्री के विरोध में, इंडस्ट्रियलाइजेशन के विरोध में, केंद्रीयकरण के विरोध में, यंत्रों के विरोध में, और जयजयकार उनका करेंगे, जन्म शताब्दी उनकी मनाएंगे, शोरगुल उनका मनाएंगे और फिर उनको टेक्नालॉजिकल रिवोल्यूशन करनी है। मुल्क को तकनीक सिखाना है। वह नहीं होने वाला है।
मुल्क के मन को एकजुट हो जाना पड़ेगा। मुल्क के मन को साफ करना पड़ेगा
कि चाहते क्या हो, करना क्या है? और उसे करने में लग जाना पड़ेगा--लगा जा सकता है। मुल्क के पास श्रम की शक्ति बहुत है, बुद्धि भी बहुत है। सच तो यह है कि आज हमारा मुल्क बुद्धि के ज्यादा होने से भी पीड़ित और परेशान है। हिंदुस्तान में युवकों के पास पहली दफे बुद्धिमत्ता की झलक आई है, लेकिन उनके पास उस बुद्धिमत्ता को सृजनात्मक रूप से नियोजित करने का कोई मार्ग नहीं है। तो वह तोड़-फोड़ कर रहे हैं।
ध्यान रहे, तोड़-फोड़, विध्वंस, हमेशा उसी शक्ति से होता है, जिससे सृजन होता है। सृजन और विध्वंस की शक्तियां दो नहीं होतीं, सृजन और विध्वंस की शक्ति एक ही होती है। अगर सृजन का मार्ग मिल जाए तो ठीक है, अन्यथा शक्ति विध्वंस के मार्ग पर चली जाती है। मुल्क के पास कोई सृजनात्मक कामना नहीं है। छीन-झपट की कामना है। इसलिए मैं कहता हूं, समाजवाद जो है वह सृजनात्मक कामना नहीं है। वह कोई क्रिएटिव एंबीशन नहीं है। वह सिर्फ यह है कि बांटो, छीनो, झपटो। जिसके पास नहीं है वह उसकी गर्दन दबाना चाहता है जिसके पास है। लेकिन संपत्ति इतने कम लोगों के पास है, ज्यादा लोगों के पास होती तो भी ठीक था, हम बांट लेते। बांटने लायक भी नहीं है मामला। कुछ बंटने जैसा भी नहीं है पास में। लेकिन पैदा करो, क्रिएट! उसका खयाल नहीं है और जब तक हम

पूरे मुल्क के युवकों को, पूरे मुल्क की आने वाली शक्ति को सृजन की कोई दृष्टि न दे सकें तब तक यह नहीं होगा। सृजन की दृष्टि लेकिन आए कब, क्योंकि पूरे देश के नेता समझा रहे हैं कि गरीब तुम इसलिए नहीं हो कि सृजन कम है, गरीब तुम इसलिए हो कि शोषण है। गरीब तुम इसलिए हो कि चारित्रिक ह्नास हो गया है। मैं कुछ बात इस संबंध में भी एक दो प्रश्न आए हैं, वह भी मैं कर लेना चाहता हूं। वह जरूरी है।
सारे मुल्क को कहा जा रहा है कि करेक्टरलेसनेस हो गई है, चरित्र का ह्नास हो गया है। पहले चरित्र को ठीक करो तब सृजन होगा, तब संपत्ति आएगी। जब भी सवाल उठता है कहीं भी कि भ्रष्टाचार है, कहीं भी कि विध्वंस है तो लोग कहते हैं, चरित्र नहीं है, बेसिक करेक्टर नहीं है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि गरीबी में चरित्र पैदा हो भी नहीं सकता, होता भी नहीं। एक विसियस सर्किल है फिर। गरीबी में चरित्र पैदा नहीं होता। चरित्र भी एक लग्जरी है, चरित्र भी एक विलास, सुविधा-संपन्नता में ही संभव है, जरूरी नहीं कि हो, संभव है। लेकिन गरीब चरित्रवान कैसे हो पाए, जिंदगी चारों तरफ से उसे कौंधती है, दबाती है और वह चरित्रहीन होने को मजबूर हो जाता है। अब हम यह कहते हैं कि जब तक चरित्रहीनता न मिटेगी तब तक तो कुछ भी नहीं मिट सकता। लेकिन चरित्रहीनता कैसे मिटेगी? इसलिए मैं कहता हूं, चरित्र की बात छोड़ दें, गरीबी मिटाने की फिकर में लगें और गरीबी जिस दिन मिट जाएगी, उस दिन चरित्रहीनता मिट जाएगी। गरीबी मिटे तो चरित्रहीनता मिटेगी, चरित्रहीनता मिटने से गरीबी मिटने वाली नहीं है, क्योंकि चरित्रहीनता ही मिटने वाली नहीं है। गरीबी मिटाएं तो चरित्र का तल ऊपर आना शुरू होता है। एक मजिस्ट्रेट मेरे पास बैठे हुए थे। वे कुछ कह रहे थे कि मैं कभी रिश्वत नहीं लेता। मैंने उनसे कहाः मैं पूछना चाहता हूं कि आपके रिश्वत न लेने की आखिरी सीमा क्या है? उन्होंने कहाः मैं समझा नहीं। मैंने कहाः मैं आपको पांच नये पैसे रिश्वत दूं, आप लेंगे? उन्होंने कहाः आप भी कैसी पागलपन की बात कर रहे हैं। मैंने कहाः पांच रुपये? तो उन्होंने कहाः नहीं। मैंने कहाः पांच सौ रुपये? उन्होंने कहाः नहीं लूंगा, लकिन उनकी "नहीं" कमजोर मालूम पड़ी। मैंने कहाः हजार रुपये? तो उन्होंने कहाः लेकिन क्या मतलब है आपका? यह पूछने से क्या फायदा है? अबकी बार उन्होंने "नहीं" नहीं कहा। मैंने कहाः और लाख रुपये? उन्होंने कहाः सोचना पड़ेगा। चरित्रहीनता का क्या मतलब होता है? पांच नये पैसे रिश्वत न लें तो चरित्रवान हो गए और लाख की रिश्वत लें तो चरित्रहीन? नहीं साहब, आदमी की सीमा है। पांच नये पैसे उसके पास बहुत हैं। अभी वह चरित्रवान रह सकता है। कह सकता है, न लेंगे। और पांच सौ रुपये, तब एक दफे सवाल उठता है कि लेना, कि नहीं लेना। पांच सौ भी एफर्ड कर सकता है, चरित्र के लिए पांच सौ खो सकता है क्योंकि उसके पास पांच सौ से ज्यादा है। लेकिन जब पांच लाख का प्रश्न उठा? तब वह कहता है कि अब जरा चरित्र महंगा पड़ जाएगा। अभी पांच लाख ले लें, चरित्र को फिर सम्हाल लेंगे। ऐसी क्या बात है!
अभी मुझसे किसी मित्र ने आकर कहा कि चित्रभानु जी गए हैं यात्रा पर। जैन मुनि हैं जा नहीं सकते थे। जैनियों ने विरोध किया है, गए हैं। तो उन्होंने मुझसे पूछा कि आपका क्या खयाल है?
मैंने कहा, पहला तो यह है कि मुनि नहीं होंगे। मुनि न होने का यह मतलब नहीं है कि हवाई जहाज पर गए, इसलिए मुनि नहीं हैं। मुनि इसलिए नहीं हैं कि जो जैनी है वह मुनि हो कैसे सकता है। मुनि तो सिर्फ आदमी रह जाता है; जैनी, ईसाई और मुसलमान नहीं। दूसरी बात यह है कि मुनि होकर भी जो कमंडल इत्यादि प्रतीक हैं जैन मुनि के, वे उनको बचा कर भाग गए हैं नौ बजे कार में बैठ कर। छीनने वाले गए थे एअरपोर्ट पर। छीनने वालों के पास भी वही बुद्धि है, बचाने वाले के पास भी वही बुद्धि है। क्या मुनि-धर्म जो था वह उन चीजों में था? वह चीजें छीनने वाले भी गए थे कि छीन लें। वे उनको बचा कर ले गए, क्योंकि उनको ही छीन लेते तो उनके पास और क्या था? वहां जाकर वह क्या करते? वह जैन मुनि तो उन्हीं चीजों में था।
वह मित्र मुझसे पूछते थे कि आप इसके संबंध में क्या कहते हैं?
मैं कहता हूं कि यह कनिंगनेस है, यह चालाकी है; क्योंकि अगर तुम्हें ठीक लगता है जाना तो जिन लोगों को ठीक नहीं लगता उनके प्रतीक छोड़ दो

क्योंकि उनके प्रतीक के द्वारा आदर लेने की बात चालाकी है, बेईमानी है। उनका प्रतीक फेंक दो। तुम्हें जाना है तो तुम जाओ, जाने की गलती और सही का सवाल नहीं है, लेकिन उस प्रतीक का आदर तुम क्यों लोगे फिर? जो कि इनकार करते हैं जाने के लिए, उनका आदर भी लेना फिर उचित नहीं है।
उन मित्र ने मुझसे पूछा है कि अब वह आकर यहां क्या करेंगे?
मैंने कहा, जहां तक होगा वह आकर पश्चात्ताप कर लेंगे। वह कहेंगे, हम क्षमा मांग लेते हैं, प्रायश्चित लिए लेते हैं और प्रायश्चित कोई बड़ा नहीं होगा, जैन-गं्रथों में क्योंकि हवाई जहाज की यात्रा का प्रायश्चित तो लिखा नहीं होगा। हवाई जहाज था नहीं। बैलगाड़ी वगैरह में कोई मुनि बैठ जाए तो उसका प्रायश्चित लिखा होगा, तो प्रायश्चित ले लेंगे, वापस जैन मुनि हो जाएंगे।
असल में उनके सामने सवाल आ गया होगा चरित्र का सवाल। अब तक जैन मुनि थे। खुद भी पैदल चलते थे। उसके एक दिन पहले तक भी कार में नहीं बैठे थे, तब तक वे जैन मुनि थे, आदर ले रहे थे। अब स्विट्जरलैंड से आमंत्रण मिला, मुश्किल हो गई। लाख रुपये की रिश्वत है। छोड़ें कि लें? अब बड़ी दिक्कत हो गई है कि जैन मुनि होने को बचाएं कि स्विट्जरलैंड जाने का मजा और स्व्जिरलैंड जैन मुनि गया। कैसे आदर और प्रतिष्ठा और उसके अहंकार को बचाए, अब यह सवाल महंगा पड़ गया। उनको छोड़ देना पड़ा। अगर आप कहते हैं कि महाराज पूना तक कार में बैठ कर चले चलो तो वे कहते कि पैदल आ जाऊंगा, क्योंकि पांच नये पैसे की रिश्वत थी, पूना तक पैदल आया जा सकता था और न भी आए पूना तक तो हर्ज क्या है। चित्रभानु गए नहीं बहुत दिनों से। बंबई में ही घूमते हैं। पूना तक भी नहीं गए मैं समझता हूं।
लेकिन लोग मोहल्ले बदल कर नगर बदल लेते हैं। जैन मुनि अगर एक मुहल्ले
से दूसरे मुहल्ले में चला जाता है कि नगर बदल लिया, रहता बंबई में ही है-- वही पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी पागलों का हिसाब है। रहता यहीं है, नगर बदल जाता है। मगर अब उनके सामने रिश्वत बड़ी आई, लाख रुपये की तो उन्होंने कहा कि अब ठीक है, अब चले जाओ। लौट कर चरित्र को फिर ठीक कर लेंगे। चरित्र को ठीक करने में देर कितनी लगती है। यह वे एफर्ड नहीं कर पाए, यही हमारे सारे लोगों का चिंतन है।
असल में दीनता, दरिद्रता चरित्र को पैदा नहीं होने देती और दीन और दरिद्र कौन है? चाहे किसी भी तरह की कमी हो, किसी तरह की इनफिरिआरिटी हो जैसे कि हिंदुस्तान के साधु के मन में इनफिरिआरिटी होती है। जब तक वह यूरोप और अमरीका न हो आए तब तक इनफिरिआरिटी रहती है, तब तक उसको यही लगता है कि वह अभी बड़े साधु नहीं हुए, अभी विवेकानंद से मुकाबला होना बड़ा मुश्किल है। तो यूरोप अमरीका जब तक न हो आए तब तक बड़ा साधु नहीं। साधु छोटा ही रह जाता है तो इनफिरिआरिटी सताती है। वह हीनता का भाव सताता है। हीन आदमी दरिद्र आदमी है। धन की हीनता हो, यश की हीनता हो, पद की हीनता हो, कोई भी हीनता हो, हीनता दरिद्रता है। दरिद्रता चरित्रहीनता पैदा करती है। सब तरह की चरित्रहीनता दरिद्रता से जन्मती है। दरिद्रताएं बहुत तरह की हैं, इसलिए बहुत तरह की चरित्रहीनताएं हैं। लेकिन बहुत तरह की समृद्धियां भी हैं। धन की भी एक समृद्धि है, तो फिर धनी को रिश्वत देना मुश्किल हो जाता है।
ज्ञान की एक समृद्धि है तो ज्ञानी को सर्टिफिकेट की रिश्वत देना मुश्किल हो जाता है। आत्म-बोध की भी एक समृद्धि है, फिर उसको अहंकार का लालच देना मुश्किल हो जाता है। शांति की भी एक समृद्धि है, फिर उसे तनाव की पुकारें व्यर्थ हो जाती हैं। चरित्र पैदा होता है समृद्धि से, सब तरह की समृद्धि से--फुलफिलमेंट! इसलिए हिंदुस्तान यह ठीक से समझ ले कि हमें समृद्धि पैदा करनी है। अभी चरित्र की बकवास में नहीं पड़ना है। समृद्धि पैदा हो, चरित्र हम कभी भी पैदा कर लेंगे और अगर हम उलटे तरफ से चलें और अगर हमने सोचा कि चरित्र पहले पैदा करेंगे तो ध्यान रहे, चरित्र तो पैदा नहीं होगा, देश और गरीब होता चला जाएगा। लेकिन कई बार भूल हो जाती है।
एक किसान खेत में गेहूं बोता है। गेहूं के साथ भूस भी पैदा होती है।
एक अनजान आदमी निकलता हो, वह सोचे कि गेहूं के साथ भूसा पैदा होता है। जब गेहूं बोते हैं तो भूसा निकल आता है तो हम भूसे को बो दें तो गेहूं को भी

निकलना चाहिए। नहीं निकलेगा, बल्कि पास का भूसा भी सड़ जाएगा। गेहूं के साथ भूसा आता है। वह उस की बाई-प्रॉडक्ट है, लेकिन भूसे के साथ गेहूं नहीं आता। गेहूं भूसे की बाई-प्रॉडक्ट नहीं है। सुविधा, संपन्नता, शिक्षा, समृद्धि इन सब की बाई-प्रॉडक्ट है, "चरित्र" जिसको आप कहते हैं। लेकिन हम सोचते हैं, चरित्र को बो दें तो फिर सब आ जाएगा। ऐसा नहीं होगा। उलटा नहीं होगा। इस देश को समृद्ध बनाए बिना चरित्रवान बनाना असंभव है और चरित्रवान बनाना हो तो समृद्धि बनाने में लगें।
एक ही लक्ष्य अगर मुल्क के सामने रह जाए आने वाले बीस वर्षों में सारी बकवास बंद हो एक ही लक्ष्य हो, भुला दें... कि इस देश को वहां किसी भी भांति बीस वर्षों में खड़ा कर देना है जहां जापान खड़ा हो गया है बीस वर्षों में, जहां इजरायल खड़ा हो गया है। अत्यंत नया। वहां हम क्यों खड़े नहीं हो सकते? हम भी खड़े हो सकते हैं, लेकिन हमारा माइंड डिवाइडेड है। हमारा माइंड हजार बातों में बंटा है। न मालूम कहां-कहां की फिजूल बातों में बंटा हुआ है। मुल्क की पूरी सृजनात्मक ऊर्जा को गलत रास्तों पर बांटा जा रहा है, लेकिन वह राजनीतिक तंत्र के हित में है। क्योंकि राजनीतिक लोगों को बांट कर ही सत्ता में पहुंचना है।
हिंदुस्तान में राजनीतिज्ञ क मूल्य होना चाहिए। हिंदुस्तान में राजनीतिज्ञ की कीमत बहुत कम करने की जरूरत है। बहुत अति हो गई है। यह जीवन के केंद्र पर बैठ गया है। सारी इज्जत, सारा आदर, सब कुछ उसके पास हो गया है। राजनीति जैसे प्राण बन गई है। राजनीति प्राण नहीं है, लेकिन वह प्राण बन गई है। उसे प्राण के पद से नीचे उतारने की जरूरत है।
एक अंतिम बात--अगर देश का हित चाहिए हो तो राजनीतिज्ञ के सम्मान को नीचे लाएं। उसे जरा नीचे उतारें। उससे कहें, आप अपने बड़े मंच से जरा नीचे आ जाएं। इतने आदर की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन बड़ा मजा है, अगर चेंबर्स आफ कामर्स का भी उदघाटन हो तो प्रधानमंत्री ही करेगा और वह प्रधानमंत्री ही उस चेंबर्स ऑफ कामर्स में व्यापारियों को गाली देगा, बिजनेस मैन को गाली देगा और वह बैठ कर सुनेंगे बड़ी प्रसन्नता से। वह छह इंच की मुस्कान बारह इंच की बना देंगे और बैठे सुनते रहेंगे। युनिवर्सिटी हो, विद्यार्थियों को उदबोधन देना हो, दीक्षांत भाषण हो, राजनीतिज्ञ देगा। जो कभी किसी युनिवर्सिटी में नहीं गए वे दीक्षांत भाषण दे रहे हैं!
राजनीतिज्ञ को हटाएं महिमा की जगह से। उसको इतनी महिमा पूरित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसकी तरफ देखना जरा बंद करें, उसकी तरफ से आंखें जरा हटाएं और सृजनात्मक केंद्रों पर आंखें गड़ाएं। जहां-जहां जीवन सृजन कर रहा है, चाहे धन, चाहे काव्य, चाहे साहित्य, चाहे धर्म, चाहे स्वास्थ, जहां भी जीवन सृजन कर रहा है वह केंद्र पर ले जाएं। वैज्ञानिक को, धार्मिक को, शिक्षाशास्त्री को, लेखक को, कवि को, धनपति को, मजदूर को--जहां-जहां सृजन है वहां मुल्क की आंख गड़े। राजनीतिज्ञ की तरफ पीठ करें तो बीस वर्ष में टेक्नालॉजी भी आ सकती है, समृद्धि भी आ सकती है, चरित्र भी आ सकता है। और देश समृद्ध हो--तो ही हम परमात्मा को धन्यवाद भी दे सकते हैं।
गरीब धन्यवाद भी क्या दे! गरीब भगवान के मंदिर के सामने भी मांग करता है, लड़के की शादी करवादे, लड़के की नौकरी लगवा दे, बीमार पड़ी है औरत, दवा दिलवा दे और देखता है गौर से, सोचता है मन में, दवा तो मिलने वाली नहीं है, पता नहीं यह भगवान सच्चा है कि झूठा है। कहता है, अगर दवा दिलवा दी तो मान लूंगा कि तू पक्का भगवान है और अगर दवा नहीं मिली तो भगवान झूठा हो जाता है। नौकरी दिलवा दी तो मान लूंगा, नहीं मिली तो सब गड़बड़ हो जाता है।
गरीब भगवान के पास भी मांगने जाता है, धन्यवाद देने नहीं। वास्तविक धर्म थैंक्स गिविंग, धन्यवाद देना है, वास्तविक धर्म अनुग्रह-बोध है, लेकिन अनुग्रह किसके पास है? जिसके पास जीवन का और सब है, वह भगवान को धन्यवाद दे पाता है कि तूने आनंद दिया, तूने शांति दी, तूने जीवन के फूल दिए, तूने वह वीणा दी जहां संगीत पैदा हो पा रहा है। दीन धार्मिक नहीं हो पाता। संपन्न, जिसके भीतर सुर बजता है शांति का, आनंद का, सुख का, वह धन्यवाद दे पाता है। प्रार्थना करता हूं परमात्मा से अंत में, कि वह दिन आए कि हम भगवान के मंदिर में मांगने नहीं, धन्यवाद देने जा सकें। मेरे

विचार में, हमारे स्वय के प्रयासों से वह दिन भी आ सकता है। आ सकता है वह दिन।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।